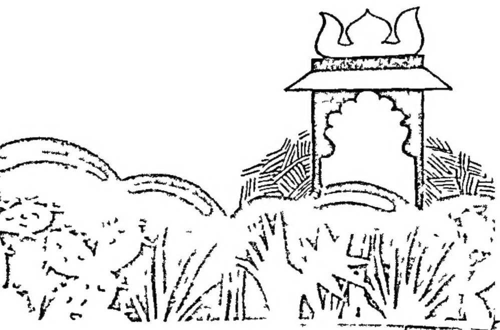
राजस्थान साहित्य अकादमी प्रकाशन



राजस्थान के कवि



सम्पादक योगेन्द्र किसलय

•

प्रकाशक राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

•

मुद्रक श्री महावीर प्रिंटिंग प्रेस हाथीपोल बाहर, उदयपुर

•

मूल्य सोलह रुपये पचास पैसे

•

संस्करण प्रथम, मार्च 1978 ई०

RAJASTHAN KE KAVI (Hindi part II)

Editor Yogendra Kislaya

क्रम

भूमिका

नई कविता अब तक उत्साह भटकाव और ठिकाव जैसी स्थितियों के होते हुए भी एक सन्तोषजनक यात्रा कर चुकी है। इसका यह अर्थ नहीं कि उसने अपनी चरम पराकाष्ठा प्राप्त करली है। अभी सफर काफी शेष है। जिन परिस्थितियों में नई कविता का उदय हुआ था वे आज भी हैं। आदमी का बौनापन और सामाजिक-आर्थिक ढांचे में उसका क्षण क्षण विच्छिन्न होना, प्रगति और समानता के नाम पर एक बहुत बड़ी मानवता का उसी प्रकार शोचनीय जीवन यापन एवं शोषण — इन सभी के विरुद्ध, एक नये यथार्थ के सशक्त चित्रण के जीवन्त प्रयास के रूप में नई कविता के माध्यम से कवि ने एक बीड़ा उठाया था, और तब से उसके जीवन का एक ही अर्थ मुख्य रूप से सामने रहा है। वह है संघर्ष। नई कविता पुराने सम्मोहनों के विरुद्ध मन और मस्तिष्क का एक बौद्धिक अभियान था, एक कारगर संघर्ष जो घिसे-पिटे मुहावरे, छायावादी एवं तुकवादी प्रेयसी प्रधान अथवा मात्र अली-पुष्प-कुंज काव्य के जर्जर साम्राज्य को अपदस्थ कर एक सर्वथा नयी चेतना और क्रांति का बिगुल बनी। 'तारसप्तक' से पहले इसका सही अहसास निराला ने करवाया था जब उन्होंने अपने नये शिल्प तथा रोजमर्रा की तल्ख हकीकत से समकालीन पाठकों को झकझोरा और उनकी दृष्टि एक अलस, रूमानी माहौल से हटाकर पत्थर तोड़ने वाली मजदूर औरत पर केन्द्रित की थी। 'तारसप्तक' की अपनी विशिष्ट भूमिका थी, और इस दिशा में अज्ञेय का योगदान वही है जो वर्ड्सवर्थ का 'लिरिकल बेलड्स' में था। जिस प्रकार 'लिरिकल बेलड्स' ने अंग्रेजी काव्य की नव-क्लासिकी, कोरी अलंकृत, दिखावटी जन समुदाय से दूर की कविता के विरुद्ध विद्रोह किया था और नये किस्म की कविता प्रारम्भ हुई थी, उसी प्रकार 'तारसप्तक' ने शिल्प और कथ्य के क्षेत्र में हिन्दी की नई कविता को रोप कर एक ऐतिहासिक महत्व की भूमिका निबाही थी।

वर्ड्सवर्थ बदलते युग का पहला कवि था जिसने परिवर्तन की बात

सामने रखी और प्रजातन्त्रीय कविता की शुरुआत की। उसका आग्रह था कि काव्य की भाषा और साधारण बोलचाल की भाषा म कोई अन्तर नही होता। यह तब भी गहमागहमी का विषय था और आज भी है। इस नए आन्दोलन के उदय के बावजूद भी कविता काफी समय तक रूमानी और आत्मपरक बनी रही। कविता के शिल्प, शब्द, कथ्य यानी समूचे ढाचे मे सबसे बडी क्राति आयी एक अलमस्त, दढियल और छत्तीस वष के प्राय अज्ञात म व्यक्ति द्वारा जो अपनी एक ही पुस्तक से न केवल महान् कवि ही बना बल्कि कविता म सवथा एक नये युग का वाहक भी। यह व्यक्ति था अमरीका का वाल्ट व्हिटमैन और उसकी पुस्तक थी—"लीव्ज आफ ग्रास" ।व्हिटमन ने समूचे काव्य जगत को एक थेरेपिक शॉक दिया। उसके इंगलड के समकालीन कवि जब राजा-रानियो और प्रेम पगी कविताए लिख रहे थे या यूलियस का नवीन प्रस्तुतीकरण कर रहे थे, उस समय इस मूर्तिभजक युगचेता कवि ने अपना कथ्य बनाया श्रमिको मछेरो, ऊनी सिर वाले नीग्रो राष्ट्र निर्माण करनेवाले स्वस्थ पुरुषो, स्त्रियो और बच्चो, रेल्वे इंजिन खुली सडक खुले पसरे घास के मैदानों तथा ऐसी ही व्यक्ति महत्व अथवा देश महत्व की साधारण से साधारण चीजो को। उसका शिल्प नितात वैयक्तिक और स्वच्छन्दी था——लम्बी फैलती जाती पक्तिया थी उसका काव्य। दकियानूसिओ ने उसके काव्य को एक आदिम चीख की सज्ञा दी, लेकिन एमसन तथा डी एच लारेंस जैसे लेखको ने उस क्रातिकारी प्रतिभा को तुरत स्वीकारा। सक्षेप म व्हिटमन नई कविता का, यद्यपि यह सम्बोधन उस समय नही था, पहला समथ कवि है और आज भी उसका प्रभाव हैं। उसने पुरानी कविता के सभी गढ, मीनार, पूरे अस्तित्व को ही एक झटके मे समाप्त कर कवि को एक मुक्त वातावरण मे लाकर खडा कर दिया जहा वह एक असम्पृक्त प्राणी नही बल्कि प्रगति, पूणता व मानवीयता से पोर-पोर जुडा श्रमकर्मी था, विश्व बधुत्व के लिय चेष्टारत युग द्रष्टा। अपनी पुस्तक की ऐतिहासिक भूमिका मे उसने कवि और कवि कम की अनूठी व्याख्या की है। पहली बार कवि के "मैं" का सही अथ 'कास्मिक व्यापकता के साथ प्रयुक्त हुआ। यद्यपि यह अथ स्वय व्हिटमैन ने भारतीय दशन से ग्रहण किया था, लेकिन उसे कवि के सम्बन्ध म नया विस्तार दिया और घोषणा की

> "देखो मैं नही देता भाषण अथवा दान
> जब मैं देता हू स्वयं को देता हू।'[1]

---

1 B.hold I do not give lectures or a little charity, when I give I give myself

इसी के साथ यह स्वर

"मैं शरीर का कवि हू और मैं आत्मा का कवि हूँ।"

'मैं' मे यदि कोरा दभ है तो पाठक उसे स्वीकारेगा नही। उस स्थिति मे न तो उचित सम्प्रेषण ही सभव होगा और न कवि और पाठक के बीच तादात्म्य ही। जब तक कवि का मैं' पाठक के मैं' से नही जुड पाता और एक व्यापक एव सार्विक सदर्भ मे प्रयुक्त नही होता उस समय तक 'मैं वाली' कवि होना या तो एक व्यर्थ सा एकालाप होगा या फिर प्रलाप। कवि नितात निजी अनुभव और सम्पूर्ण 'मैं' का यदि पाठक के कही बहुत भीतर उतार सकता है उसमे अपना विलय कर सकता है और अलगाव के स्थान पर आसक्तिशीलता (Adhesiveness) की नवीन स्थिति पैदा कर सकता है तो उसकी अर्थवत्ता होगी प्रासगिकता भी। नई कविता का अहवादी स्वर अक्सर सतही एव आरोपित लगता है। यह न अर्थ के लिए हितकर है न कलात्मकता के लिये। 'मैं प्रधान कविता जितनी कवि की है, उतनी ही पाठक की भी होनी चाहिये। इसका उद्देश्य यदि पाठक का सही जुडाव है, पृथक्करण नही जो कोरे अहम के कारण गलत दिशा पकड लेता है। वाल्ट के ही शब्दो मे एक बार और—

तुम मुझे बाधे हो और मैं तुम्हें
मैं गफा से निकलता हू तुम्हारी बाहो म।"

× × × ×

कविता मे अज्ञेय भाषा को सबसे अधिक महत्व देते हैं इसका अर्थ भाषा मे शिष्टता से हो सकता है और सम्पूर्ण तथा प्रभावोत्पादक प्रयोग से भी। शब्द शस्त्र होते हैं, हर प्रकार के भावों के सवाहक। इसमे कोई मतभेद नहीं हो सकता कि भाषा का प्रयोग समझदारी से होना चाहिये। भाषा के सुनियोजन, उसके उपयुक्त प्रयोग के अभाव म अच्छे कथ्य की रचना भी अपना प्रभाव खो बैठती है। फ्लाबेट अपने उपन्यास 'मादाम वावरी' को लिखते समय एक सही शब्द की तलाश म घटो कलम छोडकर बैठ जाता था। भाषा और शब्दो की खूबसूरती के लिए हेमिग्वे ने 'ओल्ड मैन एण्ड द सी' का दो सौ से भी अधिक बार सशोधन किया था। जब उपन्यास म यह स्थिति है तब कविता मे तो शब्द की महत्ता सर्वाधिक है। एक शब्द पूरा बिम्ब उभार सकता है, और उसकी जगह कोई गलत शब्द पूरी कविता की हत्या भी कर सकता है। अनुपयुक्त शब्द रचना का रूप विधान बिगाड देगा। कवि अपने मानस, अपनी योग्यता और अपने परिवेश के आधार पर भाषा का प्रयोग करता है। अज्ञेय, राजकमल और धूमिल की भाषा मे भिन्नता होगी ही। हर कवि अपनी पसद की भाषा खोजता है। अज्ञेय के

अनुसार "हर भाषा की अपनी एक गन्ध होती है। अगरु धूप के धुएँ से गन्धयुक्त भाषा मेरी साध्य नही। लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि मुझे बाजार की चरपरी या नाली की सडी गधो से गन्धानी भाषा की खोज है।"[1] आग्रह भाषा के परिष्कृत प्रयोग का है। दूसरी ओर भाषा के प्रति कम सजग कवि भी काफी सफल हुए हैं—अपनी अर्थवत्ता और सहज प्रवाह के कारण। कबीर और नजीर इसके उदाहरण हैं। नजीर पर तो यह आरोप है कि उसने उर्दू भाषा को बिगाडा है। नई कविता ने भाषा मे काफी छूट ली है, नई गतिप्रदान की है। आज का कवि भाषा के बन्धन को उस अर्थ म अस्वीकारता है जिस अर्थ मे उसका अभिप्राय एक विशिष्ट शालीनता, सभ्रान्त शब्दावली और भव्यता (grandeur) से है। धूमिल न गालियो का प्रयोग भी इस असर से किया है कि उनके हटाये जाने पर बात का असर कम हो जायेगा। गलिया नुक्कडो की भाषा, देहाती और ग्राम बोल चाल के शब्दो से एकबारगी विशुद्ध कलावादी नाक भौं सिकोड सकते हैं, लेकिन कविता की जीवन्तता के लिय और कवि की वैयक्तिकता के लिये भाषा का पृथक प्रयोग भाषा व सहित्य के विकास के लिये आवश्यक है। भाषा कभी एक स्थान पर नही ठहरती और जो भाषा रुक जाती है और जो रूढिवादी बन जाती है वह उस ठूठ पेड की तरह हो जाती है जिस पर नयी पत्तिया नही उगती। कविता को न किसी पाजेब की आवश्यकता है, न किसी साचे की। उसका मुक्त रहना निर्बाध बहना जरूरी है। कविता उस साँड-योद्धा की तरह नही है जो साड से लडते वक्त हमेशा लाल रग का ही कपडा दिखाता है। ब्लेक ने बहुत पहले इस ओर ध्यान खीचा था

'बदी कविता, बदी बनाती है मानव जाति को।'[2]

स्पष्ट है कलाकार औपचारिक नियमो की दासता को नही स्वीकारता। जैसा युग, जैसा युग का 'मूड' वैसी ही अभिव्यक्ति होगी और उसी के अनुरूप शब्दो का चयन। डा मदन डागा इन्फेक्शियस शब्दो का प्रयोग करना चाहते हैं

"पर मैं पहला कवि नही हू
मैं आखिरी रोगी कवि हू
और करना चाहता हू
बिना स्टरलाइज्ड किये, इन्फेक्शियस शब्दो का प्रयोग
ताकि इनकी छूत कुछ तुम्हे भी लग सके।"

× × ×

---

1 अज्ञेय, "भाषा यथार्थ" निरन्तर, जुलाई दिसम्बर 1973

2 ' Poetry Fetter'd, Fetters the human Race' Blake,

नयी कविता की अनेक समस्याए और विचित्रताएँ भी उभर कर सामने आती रही हैं। जितने नारो का बिगुल हिन्दी की नई कविता ने सुना है, जितने झडे उसने उठाये हैं, जितने वक्तव्यो के अम्बार मे वह दबी है, जितना आक्रोश और विरोध उसने प्रकट किया है उतना शायद किसी सदी की कविता ने नही। एक ही दशक मे कई पीढिया और अनेक आन्दोलन। कविता के इस मिजाज को देखकर लगता है कि इसका प्रत्यक कवि मठाधीश बनना चाहता है, किसी स्कूल का प्रवतक अपनी ही आवाज को श्रेष्ठ समझता है, और नये नार व आन्दोलन के निर्माण मे वह रचनाधर्मिता से भी अधिक उत्साही और उत्सुक है। 'तारसप्तक' से लेकर ताजी कविता और अब 'विचार कविता तक के आन्दोलनो का हिसाब लगाना भी पूरी बारहखडी याद करने जैसा काम है।

सन् साठ और सत्तर के बीच फ्रायड के साये के नीचे सेक्स का तीव्र दौर आया और कवियो की पूरी जमात ही, विशेषकर छोटी प्रतिभा वाले कवि, उसम निमग्न हो गयी। काम-इच्छा, काम चित्रण और नारी देह व भावनाओ की खुली यानी नगी तस्वीर बाजारू इश्तिहार की तरह हर जगह टाग दी गयी। सेक्स जीवन की सबसे स्वाभाविक प्रवृत्ति है, लेकिन इसके सदभ विहीन नगेपन का आग्रह न केवल अरुचिकर है बल्कि घातक भी। महज चौकाने के लिए, नवीनता या फैशनपरस्ती की रौ म बहकर सेक्स को कुत्सित बना देना कोई कवि-कम नही है। कवि के लिए सयत रहना तथा मानसिक सतुलन बनाये रखना आवश्यक है यद्यपि इन्हें विचलित करने की अनेकानेक स्थितिया सामने आती हैं। ठूसे हुए बिम्ब अथवा प्रतीक नये और सुन्दर-से होते हुए भी ऐस चित्रण को कोई अथ प्रदान नही करते।

"शाम'
'ब्रेजरी' मे 'निरोध' छिपाये
'पसनल सेक्रेटरी' सी आती है
'अरेंज मैरेज' से कतराती है"

(मनोज सोनकर)

इन पक्तियो म शाम का यौनात्मक बिम्ब प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है। 'ब्रेजरी' और 'निरोध' जसे शब्दो से कशोय लुत्फ जैसी अनुभूति भले ही जनित हो, लेकिन इसमे कही भी कोई सही बिम्ब नहीं उभरता। 'पसनल सेक्रेटरी' शाम की थकी-थकायी घर लौटती है, वह जाती है, आती नही। अतिम पक्ति मे तुक को आरोपित किया है। सेक्स कविता का यह तो बेहद नम्र उदाहरण है। जब

कवि नारी के प्रति अतिक्रमण करने लगता है, उसे जुगुप्सा का एक पात्र बना देता है तब वह भूल जाता है कि नारी भी कवि है और पुरुष के इस प्रकार के अशिष्ट, पाशविक एवं दम्भी व्यवहार के विरुद्ध उसका भी स्वर उठ सकता है—

"मैं

पुरुष के भेड़िये जैसे पंजों को तोड़ सकती हूँ, मैं

खिल्ली उड़ा सकती हूँ औरत के संदर्भ में पुंसत्व की हाँक लगाते

मर्दों की, मैं

हिकारत करती हूँ पुरुषों के सामन्ती प्रपंच से

(मोना गुलाटी)

अस्वीकृत विघायक' भाव जाप वाले कवि को साहित्य में व्याप्त अराजकता और उद्देश्य हीनता से बचना है।

× × × ×

द्वितीय महायुद्ध के बाद विश्व भर में उभरी आक्रोशी पीढ़ी अभी भी मोह भंग की स्थिति में है और नाराजगी के तेवर चढ़े हुए है। इस आक्रोश के कई कारण हैं, ठोस एवं तार्किक। सबसे बड़ा कारण है उनकी अस्वीकृति की स्थिति और विराट् निरर्थकता का बोध। इस पीढ़ी के अगुवा हैं ऑसबोर्न और गिन्सबर्ग। गिन्सबर्ग के आक्रोश में एक उद्दण्डपन है, और वह भी इस हद तक कि वे अपने मुल्क को एक बाजारू औरत मानकर, उसे भोग कर प्रताड़ित करने को तैयार हैं। ऑसबोर्न ने युवा पीढ़ी की अस्वीकृति तथा आक्रोश को तर्क सम्मत धरातल पर प्रस्तुत किया है यद्यपि उनके नाटक लुक बैंक इन एंगर का पढ़ा लिखा नायक जिमी जिस भाषा का प्रयोग करता है वह चक्लों की भाषा से कम नहीं है। वह अपने आक्रोश, सन्त्रास और घुटन को इस प्रकार व्यक्त करता है "कोई नहीं सोचता, कोई परवाह नहीं करता। कोई विश्वास नहीं, कोई धारणाएं नहीं और कोई उत्साह नहीं।"[1]

अजगरी निरर्थकता का सबसे अहम् कारण है कि हमारी पीढ़ी में और पनपने वाली हर युवा पीढ़ी में कोई उत्साह नहीं है एक छोटा सा मानवीय उत्साह। हमारे सामने कुछ भी करने को नहीं है। सब कुछ जैसे किया जा चुका है, और व्यवस्था किसी गड़े धन पर साँप की तरह कुण्डली मारे बैठी है और प्रत्येक आगन्तुक पर फन मारने को तैयार है। नयी पीढ़ी का कोई कर्म क्षेत्र नहीं, सिवाय विद्रोह के और वह भी लिजलिजा। यह निरर्थकता का आत्म-हननी

1 जॉन ऑसबोर्न लुक बैक इन एंगर, पृ० 17

बोध कितना खतरनाक सिद्ध हो सकता है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

"मेरे पास उत्तेजित होने के लिए
कुछ भी नहीं है
न कोकशास्त्र की किताबें
न युद्ध की बात
न गद्देदार बिस्तर
न टाँगें, न रात
चाँदनी
कुछ भी नहीं।"[1]

(धूमिल)

और—

"बहुत सोच विचार
सभी तरह से हताश
आज सोचता हूं
कि मेरे लिये कम के क्षेत्र मे
कुछ भी शेष नही ।"[2]

(योगेन्द्र किसलय)

इसी कारणवश आज का कवि न केवल पुरानी मान्यताओं को ही नकारता है, बल्कि वह पूरी व्यवस्था से विद्रोह करता है जिसने उसे भूख और निराशा जैसा विष पीने को दिया है। वह कविता सम्बन्धी सभी क्लासिकी, नव-क्लासिकी, कलावादी अथवा रूमानी परिभाषाएँ अस्वीकार करता है और सक्षेप मे वह उस प्रत्येक चीज से असन्तुष्ट है जो समाज ने बतौर एहसान के उसे सौंपी है। वड सवर्थ की कविता सम्बन्धी प्रसिद्ध व अति प्रचलित परिभाषा का मजाक उड़ाते हुए तथा उसे पूर्ण रूप से अस्वीकार करते हुए लुक बैक इन एगर का नायक जिमी कहता है कि एक दिन जब वह अपने दिन मिठाई की दूकान चलाने मे नहीं बिता रहा होगा तब वह एक पुस्तक लिखेगा। अपने माथे को उंगली से ठकठकाते हुए वह कहता है कि यह (पुस्तक) समूची यहां है। एक मील ऊँची आग मे लिखी हुई। और यह प्रशांति (Tranquillity) मे स्मरण नहीं की

1 धूमिल, ससद से सडक तक, पृ० 24
2 योगेन्द्र किसलय, और हम " , पृ० 79

जायेगी, प्राटी वडसवथ के साथ नरगिसी फूल चुनते हुए। यह प्राग म स्मरण की जायगी और खून मे। मेरे खून म।[1] ऐसी बात नहींकि यह चि तन एक असामा य व्यक्ति का चि तन है, और एक पक्षीयहै। यह पूरी असन्तुष्ट पीढी के उवलत दहकते मस्तिष्क का विस्फोट है। तनाव भूख, वेरोजगारी, चाबुकीय व्यवस्था, व्यक्ति को अस्वीकृत करने, नकारने की साजिश, रहबरो की स्वार्थ-दृष्टि और क्रूरता, साधनो, अवसरो आदि के दम घोटू वातावरण मे कौन आराम से उल झील मे शिकारे पर बैठकर तल्लीनता एव निरपेक्षता के साथ कविता करेगा या कवि-भूमिका निबाहेगा? कुछ शान्तिवादी एव सु दरतावादी ऐसा कर सकते हैं लेकिन जब तक मस्तिष्क म आग होगी तब तक रचनाक्रम म प्रशान्ति के क्षणो की आवश्यकता या खोज बोध वक्ष केनीचे बठा कोई तथागत भले ही करे।

प्रत्येक रचनाकार का साक्ष्य स्मरण, चि तन मनन मे लेकर अनुभवो को लिपिबद्ध करने तक का अपना विशिष्ट श्रम होता है। यहा किसी भी प्रकार की लीकायित परिपाटी अस्वीकाय होगी। भले नामवरसिंह को जगदीश गुप्त की कविता सम्ब धी परिभाषा वड् सवर्थ से उठायी गयी लगे और भले जगदीश गुप्त 'त्रयी' की भूमिका मे नामवरसिंह के आरोप का खडन करें, एक बात निश्चित हैं कि कविता को मापने का कोई निश्चित पैमाना नहीं है, न ही उसको रचन-गढन का एक स्थापित तरीका। साहित्य के लिये चि तन और बहस आवश्यक हैं मगर इससे पूव साहित्य तो होना ही चाहिये। आक्रोश हमारी ही पीढी मे देखने को मिलता है, यह भी सरासर गलत है आक्रोश और विद्रोह प्रत्येक युग के कवि म रहा है। व्यवस्था और झूठ स सघपरत रहना कवि की नियति है। सघष आवश्यक है। इसलिये कि—

'सघर्षों मे तराशा हुआ मन
हीरे की कनी बन जाय
धूमिल दृष्टियो को उदात्त
कर जाय।' (डा० रमासिंह)

× × × ×

इसी के साथ कवि कम का प्रश्न जुडा हुआ है। कविता क्यो? क्या हमे कविता करनी चाहिये? ये प्रश्न भी सामने आय हैं। कविता पर कविताएं

---

1 And it won t be recollected in tranquillity either picking daffodils with auntie wordsworth It' ll be recollected in fire and blood My blood ' जान ऑसबार्न, लुक बक एंगर, पृ० 54

बहुत हुई हैं। कविता ही कविता का कथ्य बन गयी है— रचना प्रक्रिया से लेकर उसकी सार्थकता, अनावश्यकता तक।

"कविता अब किसी के लिए नहीं है
है, तो सिर्फ इसलिए कि होती आई है
या होनी चाहिए।"— (नीलम श्रीवास्तव)

कविता यदि एक रूढ़ि है और अब इसलिए है कि होती आई है या होनी चाहिए तो इसे अन्य गली-सड़ी रूढ़ियों की भांति त्याग देना चाहिए। यदि यह विरासत में मिली ओढ़ने बिछाने की चादर है तो इसे फेंक देना चाहिए। लेकिन होने के नाम पर तो और भी हजारों चीजें होती आयी हैं। इससे बड़ी बात क्या हो सकती है कि हम पैदा होते आये हैं और सोचते हैं। हमारा बार-बार हर युग में पैदा होना ही तो हमें व्यर्थ को और नकारने के योग्य नहीं बना देता। कविता इसलिए है कि हम हैं इन्सानियत और मानव मूल्य हैं। कविता कभी न मिटने वाली उस हरी-हरी दूब की तरह है जो उपजाऊ मैदानों के अलावा कठोर पहाड़ों पर भी उगती है और अपने प्रत्येक प्रस्फुटीकरण, उदय पर नई दिखती है। उसे स्पर्श करने को, उसे समेटने को जी चाहता है भले ही उसे कुचलने, उखाड़ने और उस पर गन्द फेंकने की हमारी आदत रही है। हमारी लाख उदासीनता के बाद भी दूब फिर उगेगी ताजी पत्तियां फिर अपने सुन्दर रम्य चेहरे ऊपर उठायेंगी कविता आदमी से आदमी का रूहानी संवाद है। यह मनुष्य में प्रकृति की प्रेरणा है।

"राजेनोव[1], तुम क्या करते हो?"
मैं कविता लिखता हूं।"
मूर्ख कहीं के। बेहतर है तुम रोटी सेंको"

कविता को एक 'कमोडिटि' मानने वाले ऐसा उदाहरण दे सकते हैं। कविता से आखिर मिलता क्या है? टी० एस० एलियट और रावर्ट फ्रास्ट जैसे बहुत कम ऐसे आधुनिक कवि हुए हैं जिन्होंने कविता से अपनी रोटी सेंकी है अर्थ एवं यश प्राप्त किया है। भारत में तो कतई नहीं। कविता यहां कवि को विक्षिप्तावस्था तक तो पहुंचा सकती है, सम्मानीय रोजगार नहीं दे सकती - कालिज के

1 वेसिली राजेनोव (1856-1919), प्रसिद्ध रूसी लेखक। यह उद्धरण उनके निबन्ध 'स्वयं पर' से है।

स्टॉफ रूम मे जब बुद्धिजीवी (?) साथी कवि को कपि या सिरफिरे की सज्ञा देते हैं और उसके साथ समूची नई कविता का मखौल उड़ाते हैं तब एकबारगी यही अहसास होता है कि ये बौद्धिक दिवालिय कविता को तो नहीं स्वीकार सकते लेकिन जिन्दगी के यथार्थ से भरपूर जुड़े हैं और इसलिए साहित्य अथवा कविता में व्यर्थ अपना समय नहीं गवाना चाहते । वे हर बुरा और भोंडा काम कर सकते हैं, लेकिन अपनी पूरी जिन्दगी में चार कविताओं से भी साक्षात्कार नहीं कर सकते । कविता ऐसे कुलीन अभ्यागतो की परवाह भी नहीं करती। लेकिन प्रश्न तो फिर भी बना ही हुआ है । कविता आखिर देती क्या है। और जब यह निरर्थक है इसका कोई लाभ नहीं है तो फिर यह हजारों वर्षों से सुनहरे सर्प पर केंचुल की तरह लिपटी हुई क्या है ? धूमिल अपने ठेठ देहाती तरीके से इसी चिन्तन प्रक्रिया के अन्तर्गत पूछता है

"कविता मे जाने से पहले
मैं आपसे ही पूछता हू
जब इससे न चोली बन सकती
न चोगा
तब आपै कहो
इस ससुरी कविता को
जंगल से जनता तक
ढोने से क्या होगा ?" [1]

कविता में जाने से पहले आगा पीछा सोच लीजिये । कविता हर ऐरे गैरे को बाध्य नहीं करती । जो इसे अपनाते हैं या जिसे यह अपनाती है वे ही इसके सुख-दुख भोगी हैं। कविता के शत्रु बार-बार प्लेटो का उदाहरण देते हैं । उनका तर्क है कि प्लेटो ने कवि को अपनी रीपब्लिक से इसलिए बहिष्कृत किया कि कवि झूठा है और वह यथार्थ का प्रतिनिधित्व नहीं करता यानी उसे दूर रखो वरना अन्य नागरिकों को भी वह अपने जैसा झूठा कोरा कल्पनाशील और निकम्मा बना देगा। प्लेटो को समझने मे एक भारी ऐतिहासिक भूल हुई है। वह स्वय कवि था। फिर तो अपनी 'रिपब्लिक' से वह भी निष्कासित ही रहता । वास्तव में प्लेटो का आरोप अपने उन सब समकालीन कवियों पर था जो कवि कम और नकलची अधिक थे—होमर के । वे अपना नहीं दूसरो का लिख रहे थे, उनमे रत्तीमात्र भी मौलिकता नहीं थी । उसने थोथी, नकलमात्र उद्देश्यविहीन, चाप-

[1] धूमिल, ससद से सड़क तक, 'कवि १६७०" पृ० ६६

लूसी पूण अपने समय की कविता को नकारा था न कि शाश्वत कविता या कवियो को। यदि उसके युग मे होमर जैसा कवि हुआ होता तो वह शायद 'रिपब्लिक' का सबसे श्रद्धेय नागरिक होता। प्लेटो की कवि की इस अस्वीकृति को कविता-शत्रु ब्रह्म वाक्य की तरह हवा म उछाल दते हैं, जब कि वह स्वय इसलिए परेशान था कि उस समय ग्रीस-कविता का ह्रास हो गया था, और ऐसी स्थिति स तो न होने की स्थिति बेहतर थी। कविता क किसी विशेष युग अथवा प्रवृत्ति का ह्रास उस समय होता है जब कविता एक कलाबाजी दरबारी बहलाव चापलूसी की चीज या सिफ टाइपाग्राफी, बयानबाजी हो जाती है और जब सवेदना का स्थान कोरा दिमागीपन ले लता है और कृत्रिमता हावी हा जाती है या दाते के शब्दो म कवि जब हवा म झपट्टा मारकर कविता का उत्पादन करने लगता है। आज की कविता भी ऐस खतरो से सुरक्षित नही है। जीवन और कविता मे यदि अन्तर है बनावटीपन अथवा दिखावा है तो इसका विरोध हागा—

'डनलप के पलग पर मानें वाले दोस्त
जनता के लिए कविता लिखना बन्द करो।"
(कमर मेवाडी)

कविता के प्रयोजन पर बात उठी थी। यह निश्चित है कि कविता साहित्य की आम विधा नही है। इसके पाठक सदा कम थ कम है कम रहेंगे। इसी के साथ सम्प्रेषण की समस्या जुडी है। कविता का सम्पूण सम्प्रषण गद्य की भाति सभव नही। 'अच्छे कवि सामान्य पाठक क लिए नही लिखते और न कभी लिखेंगे।"[1] ऐसी ही बात मुक्तिबोध ने कही है कि उनकी कविताओ का समझने के लिय पाठक को उनके स्तर तक आना पडगा। एस मे जनता की कविता का अभियान पूरी सार्थकता प्राप्त नही कर सकता। सरल स सरल भाषा की कविता भी दोहर तिहर अर्थो वाली और दुरूह हो सकती है। सम्पूण सत्य कहो किन्तु इसे अप्रत्यक्ष रूप म कहो"[2] का सिद्धान्त मानने वाले कवि आसान दिखकर भी आसान नही होत। सपाटबयानी का मतलब अथ की सरलता नही। उदाहरण के लिय इस सग्रह म मणि मधुकर की कविताए भाषा की दृष्टि स सीधी सरल हैं लेकिन अथ की दृष्टि से गहरी और 'स्लेंट'। खैर! जब कविता के पाठक कम है, जब यह आसानी स पल्ल नही पडती और जब वैज्ञानिक एव तकनीकी प्रगति

---

1 'Fine poets do no write for the average reader and never will
एलिजाबेथ ड्रिड, डिसकवरिंग पोयट्री, पृ० 78

2 Tell all the truth
But tell it slant (Emily Dickinson)

व युग मे आत्मी तथ्यो की दुनिया मे जी रहा है तो 'ससुरी कविता' से चिपटे रहने म क्या लाभ अथवा बुद्धिमानी है ? मैकाले के अनुसार जैसे जैसे सभ्यता प्रगति करती है कविता का निश्चित ह्रास होता है लेकिन जिस सभ्यता म कविता का तिरस्कार होता है क्या वह सभ्य कही जा सकने के योग्य भी है ? हम आज तथ्य पसद लोग हैं, सच्चाई पसद नही तथ्य और सच मे उतना ही अन्तर है जितना शरीर और आत्मा म। हकीकत तो यह है कि कविता के प्रति अनुदार भाव या उदासीनता भौतिक सम्पन्नता की बबरता और मानवता क खोखलापन का सूचक है। यहा जूडिथ राइट का उद्ध त करना चाहूँगा "हमारे भीतर जब कविता कुम्हला जाती हैं तब अधिकाश अनुभव और वास्तविकता भी कुम्हला जाती हैं, और जब यह घटित होता है तब हम तथ्यो की निजन दुनिया म रह रह होत हैं न कि सच्चाई की— एक दुनिया जा रहने के लिय कष्ट उठाने क शायद ही उपयुक्त है।[1]" अथ-भोगी, भौतिकतावादी एव उपयोगिता को महत्वपूण मानने वाले पीकॉक की भांति यह कह सकते हैं 'कविता कभी भी एक दाशनिक या राजनीतिज्ञ का निर्माण नही कर सकती, न ही जीवन के किसी भी वग म एक उपयोगी या तार्किक मनुष्य का ही।"[2]

कविता ऐसी नकारात्मक एव बेशुमार शकाओ का सहज उत्तर है। यदि व्यक्ति भला है रागमयी है तो निश्चित ही उसके मानस मे कविता के लिये ललक होगी। कवि एक बेहतर इसान है। उसका निश्चित योगदान है और वह इस धरती पर केवल रोटी अजन के लिए ही नही आया है।

"मैं स्वय अपनी निष्क्रियता तोडता हूं,
और समझता हू ठीक अपने को उनसे
जो बन्द हैं न खुले
कलकित हैं न धुले।' (योगेन्द्र किसलय)

---

1 When poetry withers in us the greater part of experience and reality wither too and when this happens we live in a desolate world of facts not of truth——— a world scarcely worth the trouble of living in —

आस्ट्रेलियन पोयट्स, स० जूडिथ राइट, पृ० vi

2 Poetry can never make a philosopher nor statesman nor in any class of life a useful or rational man (Peacock)

कविता का एक अर्थ है व्यक्ति की सम्पूर्णता और उसका परिष्कृत होना। सिकन्दर जब विश्व अभियान पर निकला था तब उसके पास एक नक्काशीयुक्त मंजूषा में महाकवि होमर के काव्य की एक प्रति थी जिसे हर समय वह अपने पास रखता था। व्यवसाय और तथ्यों से उकताकर व्यक्ति कविता की तलाश करता है, और कविता उसे कभी निराश नहीं करती भले ही आक्रोश अथवा तुरंत लाभ के अभाव में धूमिल या पोकॉक के शब्दों में उस पर लांछन लगाया जाये। कविता व्यक्ति का पतन नहीं करती बल्कि व्यक्ति उसका पतन करता है। कविता जीवन उत्साह है, उसकी नियति प्रगति है, मनुष्य का उत्कर्ष नहीं। घोर निराशावादी कवि भी स्वर्णिम युग की बात करता है। मानवता की पुनःप्रतिष्ठा के लिये कवि ने व्यक्ति को अनिवार्य माना है। व्यक्ति के मात्र कल पुर्जा बन जाने पर नये कवियों ने तीखे प्रहार किए हैं, व्यक्ति को मात्र मोहरा समझने वाले और जिन्दगी की बिसात पर उसे दौड़ाते फिरवाने वाले क्रूर हाथों के विरुद्ध उन्होंने आवाज उठायी है। सर्वेश्वर ने आज के कवि को एक काला झंडा की संज्ञा दी है जो अन्याय और अपमानता के खिलाफ अकेला ही खड़ा है। धर्मवीर भारती के शब्दों में नई कविता के पीछे केवल शिल्पाग्रह नहीं जीवन आग्रह है।" शिल्प एवं नवीनता की उत्कटता में टी. एस. एलियट ने वेस्ट लैंड में नई कविता को अत्यधिक दुरूह बनाकर सामान्य पाठकों की तो बिसात ही क्या कविता समर्थियों और चोटी के समालोचकों के लिए भी उसका सही अर्थ खोज पाना, उसे पूरी तरह समझ पाना दुष्कर कर दिया है। लेकिन एक बात निश्चित है कि एलियट का ध्येय नकारात्मक एवं कोरी लफ्फाजी का नहीं है यद्यपि अपनी प्रकांड विद्वत्ता प्रदर्शित करने का आग्रह उसमें अवश्य है। वह जो चाहता है वह यह है कि आज जिस बंजर भूमि पर हम रह रहे हैं उसमें कभी बरसात आये और वह लहलहाए। जो पाप हमने किये और जिसके कारण हमारी भूमि शापित है वह धुल जाये और व्यक्ति अपनी समस्त सार्थकता के साथ पापमुक्त होकर जीवित रह सके। यह दूसरा प्रश्न है कि कवि इतनी अहम् बात को इस जटिलता के साथ प्रेषित करे और इतना भयंकर पांडित्य दिखाये कि समर्थ आलोचकों को भी पांच दस वर्षों के गहन अध्ययन के उपरान्त भी कविता की सभी तहें बिम्ब प्रतीक स्पष्ट न हो सकें। ऐसी रचना हमेशा एक छोटे वृत्त की रचना होगी— केवल हिस्सों में सम्प्रेषित एक विशिष्ट वर्ग के लिए। लेकिन कविता के जीवनाग्रही मूल्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। नई कविता ने खोये हुए व्यक्ति की तलाश की है, उसे समर्थ बनाने के लिए संघर्षरत रही है। दरअसल हर युग में सही साहित्य ने कमोबेश यह कार्य किया है।

"यदि दुर्बलता रूप में बदल जाय
व्यथा अन्तर्दृष्टि दे

खण्डित आत्माएँ
सचित कर सकें शक्ति की मनिधाएँ,
जो जल कर अग्नि को भी
गध-ज्वार बना दें,
तो मैंने अपना कवि धम पूरा किया
चाहे मम सहलाया न हो, कुरदा हो।"

(सर्वेश्वर, तीसरा सप्तक)

और,

"तुम निराश हो।
काश ! मैं बन पाता तुम्हारी वैसाखी।"

(भागीरथ भार्गव)

दूर से तमाशा देखने वाले और मात्र सहानुभूति के आधार पर सम्बध बनाये रखने वालों को कवि पहचानता है। श्री नद चतुर्वेदी ने अपनी कविता "बीमार लडका" में जो "कुछ करने' की बात कही है वह जीवन के प्रति एक सही दृष्टिकोण है। सहानुभूति नहीं, निश्छल जुडाव, कोरे शब्द नहीं, बल्कि कर्म !

'मैं तो केवल यही कहने के लिए बार बार आता हूँ कि
अब बहुत थोडा समय है
कुछ नही के बराबर समय है
और मैं उन लोगो के साथ हू
जो बीमार और मृत लडके की मृत्यु पर रोयेंगे नहीं
बल्कि कुछ करेंगे।"

(नद चतुर्वेदी)

मैक्सिम गोर्की ने अपने निबंध 'साहित्य पर' में सवकालीन बातें कही हैं। व्यक्ति का अकेलापन, पीडा, त्रासदी किस युग में नहीं रही ! बात तो जीवन को खुली आँखो से देखने के साहस की और व्यक्ति को निरर्थकता से बचाने की है। गोर्की के ही शब्दों में "मानव भूलें शब्द और बिम्ब कला की इतनी विशेषतासूचक नहीं हैं, अधिक वशिष्ट्य है मनुष्य को जीवन की बाहरी स्थितियों से ऊपर उठाने की अदम्य इच्छा उसे अपमानकर वास्तविकताओं की कडियों से मुक्त करना, उसे उसका साक्षात्कार गुलाम की तरह नहीं बल्कि परिस्थिति के स्वामी की तरह, जीवन के मुक्त रचयिता की तरह कराना और इस रूप में

साहित्य सदा क्रान्तिकारी है।"[1] इसी निबंध मे गार्की का एक और कथन है जो साहित्य की गरिमा को बढ़ाता है, सही रूप म उसे लक्षणित करता है— "सुन्दर साहित्य, गद्य और पद्य, हमारा महान समर्थन है, और हमारा दण्डादेश नहीं।"[2]

जीवन के क्रूर अन्तर्विरोध, राष्ट्रो, वर्गों एव व्यक्तियो की शत्रुता और घृणा राजनीति की ही नही अपितु साहित्य की भी पुरानी भूलें हैं। आज के कवि को ये भूलें नही दोहरानी हैं। इन भूलो को नष्ट करना है ताकि विश्व-बन्धुत्व एक नारा नहीं बल्कि हकीकत का रूप ग्रहण कर ले।

मैंने तो केवल जाना है
किस तरह सृजन
गलत हाथो म पडकर
रास्ता भटक जाता है।"

(सुधा गुप्ता)

भूलो भरा गलत सजन व्यक्ति के प्रति आस्था को ही चोट नही पहुँचायेगा बल्कि उसे भटकाव, आत्म पीडन व आत्म क्षय की स्थिति म भी डाल देगा। स्वस्थ व मांगलिक जीवन के स्थान पर तब वह अनगिनत कुठाओ का नागपाश बन जायेगा।

कवि कभी अपने सुख व तुष्टि के लिये लिखता होगा, लेकिन आज वह औरो के लिए लिखता है पूरे समाज के लिये लिखता हैं और वह मुखोटाधारियो पर, देश को लूटकर, बिगाड कर अपना अस्तित्व बनाये रखने वाले दुष्ट नेताओ पर, असमान व्यवस्था पर मनुष्यो को और भी हीन और दलित बनाये रखने के योजना-बद्ध षडयत्रो पर प्रहार करता है, खतरों की चेतावनी देता है। वह खुद की अकमण्यता, दब्बूपन और सुविधापरस्ती को भी नही बख्शता। धरती का कवि महज शब्दो मे हो, और विश्व-प्रेम अथवा प्रगति मात्र अभिनय तो वह चीख उठेगा

मेरे दोस्त !
मैं यह साफ साफ जानता हू,

---

1 द वैल्डस बेस्ट एसेज, स , एफ एच प्रिचड

2 " Fine literature, prose and poetry, is our great vindication, and not our condemnation '

कि धरती तुम्हारे खून मे नही है
वह महज तुम्हारे अभिनय मे है।'[1]

(रामदेव आचार्य)

आपातकालीन स्थिति मे अभिव्यक्ति ही नही देश का अस्तित्व ही बन्दी हो गया था। उस दौरान बुद्धिजीवियो का जो 'रोल' रहा उस पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। लेकिन यह सोचना भी गलत है कि उन्होंने सारी स्थिति को स्वीकार या पचा लिया था, और वे पालतू या टुकड़खोर कुत्ते की तरह दुम हिलाने लगे थे। ऐसे कई थे भी और ये हमेशा रहेंगे। ये तथ्यों *(Facts)* की दुनिया के आदमी हैं सच्चाई *(Truth)* की दुनिया के नही। ऐसे भी कुछ कवि थे। जो सपादकों के साहस के कारण और सेंसर अधिकारियो को मूर्ख बनाकर या चकमा देकर प्रकाशित हुए। दुष्यंत कुमार की दो गज़लें 'नया प्रतीक' में आपातकाल के प्रारम्भिक दौर मे प्रकाशित की गयी थी और इस पर सम्पादक से पूछ-ताछ हुई थी। छोटे पत्रो ने अधिक साहस दिखाया था। लेकिन कुल मिलाकर हमारा बुद्धिजीवी वर्ग या तो डर गया था या खरीद लिया गया था। हमारा यह व्यवहार इस बात का द्योतक है कि हमे अपनी चमड़ी से कितना प्यार है और हम त्याग से कितना डरते हैं। मुक्तिबोध ने "अभिव्यक्ति के खतरे उठाने" की जो बात कही थी वह हमने झुठला दी और हम बन्द कमरो मे युग-परिवर्तन की सहमी दबी आवाज में बातें, कोरी बातें करते रहे। ऐसा नही होना चाहिये था और यदि हुआ तो बुद्धिजीवी को पत्नी के शब्दो मे—

"यदि तुम कायरो की
जिन्दगी जियोगे
तो मैं यह घर छोड़कर
कही चली जाऊँगी।"[2]

(सर्वेश्वर)

बहुत सीधे सरल शब्दो मे सर्वेश्वर ने बुद्धिजीवियो पर यह प्रासंगिक कटाक्ष किया है। इसी सन्दर्भ मे इस संकलन के कवि वेदव्यास की यह सशक्त पंक्ति—

"हम सब अपराधी हैं निर्णय दृष्टि के।'

---

1 'वही- 1', स. डा. जगदीश गुप्त, पृ० 44

2 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जंगल का दर्द, 'पर घर' पृ० 54

नई कविता को आज सबसे अधिक आवश्यकता सृजन की है, नारो और आदोलनो की नहीं। फिलहाल हम ताजी कविता और विचार कविता से खेम रापने की बातें कर रहे हैं। किसी धारा विशेष को हम जितनी तत्परता से अपनाते हैं उतनी तत्परता से उसे त्याग भी देते हैं। शायद इसका एक कारण यह है कि हम कवि-कर्म के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है। हम सहज प्रतिष्ठा चाहते हैं नकल करते हैं और बिना सोचे- समझे भीड़ के पीछे हो लेते हैं। कवि अपना वयक्तिकता और सवेदनाओ के प्रति ईमानदार नही होगा तो वह स्थायी महत्व की रचना नहीं कर पायेगा। वह यदि जुलूस का एक अदना-सा अग बनकर रह जाता है या दूसरों का व्यक्तित्व ओढ़कर स्वय को प्रतिष्ठित, प्रतिपादित करता है तो इससे कोई उपलब्धि नही होने वाली। अपने बाह्य और अन्तर का साक्ष्य उसे स्वय करना है और अपनी अनुभूति को ईमानदारी के साथ प्रेषित करना है। 'साहित्यकार प्रचारक नहीं, वह चिन्तक है, वह बधा नहीं उन्मुक्त है वह अपने अन्तर्विवेक पर चलता है किसी नेता की नीति पर नहीं ।'[1] इसी के साथ अस्मिता और स्वय को पहचानने का प्रश्न जुड़ा है। कवि रिल्के का कथन है "अपने भीतर जाइये और उस गहराई को जाचिये जहा से आपकी जिन्दगी ऊपर आती है। इसके स्रोत मे ही आपको इस प्रश्न का उत्तर मिलेगा कि क्या आपके लिये सृजन अनिवार्य है ?" जिनकी कविता मे राजनीति है भले ही सीमित और ढुलमुल वे ही आज के सजग कवि हैं और जो राजनीति से अप्रतिबद्ध है वे कवि कहलाने के योग्य नही, यह वर्गभेद साहित्य मे अवरोध और मनोमालिन्य पदा कर सकता है विकास नही। डा० जगदीश गुप्त ने प्रतिबद्धता के नाम पर समथनवाद की कड़ी भर्त्सना की है। 'कविता का विषय अब किसी प्रकार की सीमा नहीं मानता और न इसकी अभिव्यक्ति ही किसी तरह का अकुश सहन कर पाती है। इसलिए आज कवि का दायित्व बढ़ गया है।'[2] स्वय मुक्तिबोध के अनुसार ' नई कविता वस्तुत, एक नई तर्ज है नया काव्य प्रकार है, और उसमे विभिन्न विश्व दृष्टियों या विचार-धाराओ को स्थान प्राप्त है।"[3] कला निश्चय ही सलेक्शन' की चीज है, लेकिन चुनाव प्रकार की रचयिता पर कोई बाध्यता नहीं। यह चुनाव जीवन अनुभव, साक्ष्य, आन्तरिक अनुभूति के किसी भी कोने से हो सकता है। कवि की सबसे

---

1 वीरेन्द्र कुमार गुप्त 'साहित्य सृजन आस्था और प्रतिबद्धता '–मधुमती जनवरी-फरवरी 1970 (सयुक्तांक)

2 वही-1

3 मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौन्दर्य-शास्त्र, पृ० १२

बड़ी प्रतिबद्धता जीवन और अनुभूति से है स्वयं के सृजन से है अपनी रचना की सच्चाई से है। यदि प्रतिबद्धता का अर्थ किसी राजनीतिक विचारधारा से आबद्ध होना है तो फास्ट जैसे महान कवि को हम नकारना होगा जो कहता है 'राजनीतिक स्वतन्त्रता मेरे लिए कुछ महत्व नहीं रखती।"[1] तीसरा सप्तक में एक खास बात है कि उसमें कविताओं से पहले उनमें दिये गये कवियों के वक्तव्य हैं। विजयदेव नारायण साही ने कविता सम्बन्धी आस्था के पच्चीस शील प्रस्तुत किये हैं। वे मात्र एक सनकी की भक नहीं। उनमें यथेष्ट कटु यथार्थ है। उनका आठवां शील इस प्रकार है "कविता को राजनीति में नहीं घुसना चाहिए। क्योंकि इससे कविता का तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, राजनीति के अनिष्ट की संभावना है।" यहीं पर कवि की पंक्तियाँ—

"मर गया मैं रोग-भूख बीमारी से
गालिब निराला, मुक्तिबोध बनकर,
राजनीति से कहो कि मुझे
भवन भाषण या शताब्दी न बनाया जाये।"

(रामदेव आचार्य)

लेकिन आज के युग में शुद्ध प्रकृतिवादी अथवा रूपवादी कवि भी समसामयिक स्थितियों से परिचित हो नहीं उनसे बिना जुड़े हुए भी नहीं रह सकता। कोई भी जागरूक कवि मानवता तथा आदमी की सत्ता के विरूद्ध साजिश करने वाली राजनीति का समर्थन नहीं कर सकता और यदि करता है तो वह कवि नहीं व्यापारी है देश बिगाड़ा है। व्यक्ति की सम्पूर्णता के संघर्ष से कोई भी लेखन पृथक नहीं रह सकता। ऐसा लेखन राजनीतिक नहीं, पम्फ्लेटी नहीं बल्कि व्यापक अर्थ में मानवीय एवं कर्तव्यनिष्ठ लेखन है।

'नहीं आरोप नहीं,
केवल तुम्हारी नींद से शिकायत है
तारीखें पूरी तरह सचेतन
और तुम बेहोश ।।'[2]

(कुबेर दत्त)

---

1 ' Political freedon is nothing to me '

2 "पश्यन्ती', अप्रेल-जून १९७५

नई कविता की उपलब्धिया हैं। केवल मिथको प्रतीको और बिम्बो का नवीन प्रयोग ही नही, बल्कि उसने वतमान काव्य को एक सवथा नई दृष्टि दी है, ठहराव की स्थिति को तोडा है, अभिव्यक्ति न पा सकने वाली अनुभूतियो को अभिव्यक्ति दी है। डा० नरेन्द्र मोहन के अनुसार इसमे" जीवन का साधारणता का महत्व हैं, लघुता स्वीकार है और अभिजात्य का अस्वीकार।"[1] नई कविता ने कविता को विशाल व्यापकता प्रदान की हैं और सतरा व बहरो से कही महत्वपूण व्यक्ति को माना है। डा० नामवरसिंह के शब्दो मे नई कविता ने हमारी काव्य-भाषा को समृद्ध करने म महत्वपूण योग दिया है। कुल मिलाकर नई कविता न समग्ररूप से हम एक नया और परिपक्व काव्य बोध दिया है जिसके द्वारा हृदय और बुद्धि की पूववर्ती विच्छिन्नता समाप्त हुई।'[2] यह सच है कि हृदय और मस्तिष्क का, भावनाओ और तक का ऐसा सामजस्य पहले कभी नही हुआ।

इसी क साथ नई कविता की अपनी कमिया या सीमाए भी हैं। कुछ सीमाओ का डा० इन्द्रनाथ मदान न उल्लख किया है। गद्यता इसकी सबस बडी सीमा है जिसने इसकी लय को अस्त व्यस्त कर रखा है। इसकी कथनी और करनी म अभी अन्तर है। एक और बडी सीमा है। वह यह कि नई कविता स्मरणीय नही है। इसी कारण इसे कही बिना पुस्तक या डायरी के नही ले जाया जा सकता। अत्यधिक वक्तव्यबाजी, सेमबाजी, बडबोलापन और अति नवीनता क आग्रह से इसे क्षति पहुची है। नई कविता कही फुटकर कविताओ को ही विधा बनकर न रह जाये। सशक्त लम्बी कविताओ का अभी अभाव है।

× × × ×

राजस्थान का वतमान हिन्दी काव्य आपके हाथो मे देते हुए मुझे गर्व का अनुभव हो रहा है यद्यपि मैं पूण आश्वस्त हूँ कि यह काय मुझसे कही बेहतर कोई अन्य कर सकता था। शायद इसे सम्पन्न करने का आगे बढकर मैंने जो बीडा उठा लिया वह आज सोचता हू मेरा विवेक नही बल्कि दुस्साहस ही था। खैर! राजस्थान साहित्य अकादमी न 1964 म श्री नद चतुर्वेदी के सम्पादन में **राजस्थान के कवि** नाम से ऐसा ही एक सकलन निकाला था जो आकार म इससे बहुत बडा और अठत्तर कवियो की भीड को लिए हुए था। ठीक

---

1 स्वतन्त्रता रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रन्थ, 'नई कविता स विचार कविता तक" पृ० ४३१

2 डा० नामवरसिंह **नई कविता**, "उपलब्धिया और बिम्ब विधान" पृ ४०

तेरह वर्षों बाद अकादमी यह सकलन निकाल रही है जो पिछले से आकार, शिल्प, कथ्य आदि म भिन्न है। बहतर होने का दावा करना तो मेरी मूर्खता होगी। इसमे कविया की सख्या कम रखी गयी है ताकि सकलित कवियो को पृष्ठ अधिक मिल सकें और वे अपने कवित्व का विशिष्ट, सार्थक सा परिचय पाठको को दे सकें। प्रान्त के कुछ कवि व धुम्रो ने शायद इसम सम्मिलित नही होना चाहा होगा, तभी उन्होने मेरे निवेदन के बाद भी अपनी रचनाएँ नही भेजी। बहुत से नामो का छूटना भी सभव हैं। यह मेरी मजबूरी अथवा कमी हो सकती है, लेकिन मैंने यथासभव इसे राजस्थान की आज की हिन्दी कविता का प्रतिनिधि सकलन बनाने की चेष्टा की है।

राजस्थान की हिन्दी की नई कविता किसी भी प्रात से पीछे नहीं है सिवाय एक बात के कि हमारी कविता पर्याप्त चर्चित नही हुई है। कुछ हमारे समालोचको की मेहरबानिया जिनकी नजर जब भी पडी बाहर पडी। प्रात से प्रकाशित होती रही साहित्यिक पत्रिकाओ ने भी अपने कविया का ध्यान कम रखा। कुछ पत्रिकाओ की नजरें तो दिल्ली, इलाहबाद और बनारस से हटी ही नही। फिर भी हमारे कवियो का बाहर चर्चा है। इस सकलन के कुछ कवि लम्बे अर्से से अपने लेखन की निरन्तरता बनाये हुए हैं और देश की प्रत्यक्ष पत्र पत्रिकाओं मे प्रकाशित होते रहे है। मेरे कहने का आशय इतना ही है कि राजस्थान का कवि आत्मनिर्भर है। जो यह है अपनी रचनाशक्ति के कारण है। उस पर कोई प्रतिष्ठानी अथवा इस या उस खेमे की कृपा नही है। और यह शुभ भी है।

हमारे कुछ कविया के शिल्प, कथ्य और चिन्तन मे अन्तर आया है यह आसानी से मणि मधुकर हरीश भादानी और सुधा गुप्ता आदि मे देखा जा सकता है। मणि मधुकर की कविताओ म एक सुखद परिवर्तन है। चौकानेवाली शब्दावली नियत्रित हुई है और नखरो के स्थान पर निरभ्रता आयी है। प्रस्तुत सकलन म उनकी कविताएँ एक बदलत 'मूड' का अहसास दिलाती हैं। उनकी कविता 'धुध के पीछे' की आरम्भ की पक्तिया उद्धरित कर रहा हू—

"कितना पानी
सूख गया है नदी और रेत के
सम्ब धो मे
कितनी दरारें तरने लगी है
सुबह और शाम के रगो मे।"

(मणि मधुकर)

पूरी कविता संकेतात्मक है, कहीं शाब्दिक जटिलता नही लेकिन अर्थ गाभीर्य से युक्त और पाठक को सोचने के लिए अगला पृष्ठ उलटने से पहले थाम लेती है। कविता की सफलता इसी बात पर है कि वह पाठक को कहीं गहरा छुए, उसके भीतर पूरी समा जाये और कवि तथा पाठक मे फिर कोई दूरी ही न रह जाये। 'ताई प्रभुताई' मणि की चर्चित कविता है। उसकी कुछ पक्तिया—

"किसी का पता नही कितनी कथियो की जरूरत है
ताई प्रभुताई के केश सुलझाने के लिए
कितने देहधारी शब्दो को बुलाया गया है
दीवारो में चुने जाने के लिए
ठडा पसीना ठठी ऋतु के स्वागत मे खड़ा है बेआवाज़।"

मणि तरह-तरह के प्रयोग करने वाले समर्थ कवियो मे से हैं। कई बार प्रयोग की प्रमुखता कविता की समग्र सुघड़ता एव अर्थवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल जाती है। किन्तु मणि की इन रचनाओ मे प्रायोगिक प्रयास कम, अर्थ एव बौद्धिकता अधिक हैं। मैं समझता हू सबसे कठिन कविता वह होती है जो अत्यधिक आसान शब्दो म कही गयी होती है। मात्र भारी-भरकम शब्दो का अम्बार कविता को रत्ती भर भी दुरूह नहीं बनाता।

सुधा गुप्ता मे एक नया विकास और परिपक्वता आयी है। वे खुलकर कहने लगी हैं और अपने माहौल को करीब से देखने लगी हैं। 'ऋतुओ की भाषा' म उनकी ये पक्तिया इसकी पुष्टि करती हैं—

'मत दो मुझे,
उन हुतात्माओ का पता
जिनके पास पुण्यो की
एक लम्बी फहरिस्त है
उपदेशो के भारी भरकम शब्द हैं,

मैंने तो सिर्फ
उन बदहवास चीखते लोगो को
कापती टागो से
घिसटते देखा है
जिन्हे मुक्ति पानी है
अपने आस-पास की गर्म हवा से।"

श्री नद चतुर्वेदी, रामदेव आचाय, रणजीत, जुगमन्दिर तायल, कमर-मेवाडी, मदन डागा, नद किशोर आचाय का अपना वैशिष्ट्य है, कहन का ढग है, तथा दृष्टि या प्रतिबद्धता के अनुरूप ही उनका कथ्य है। एक बात जो अधिकाश कवियो मे समान नजर आयी वह है सामाजिक असमानता, खोखलेपन, व्यक्ति के साथ चल रहे मजाक और इससे जनित आक्रोश, घुटन तथा साथ ही मानव आस्था एव जीवन के विविध रगो से सम्पक। नद चतुर्वेदी आदमी के साथ हुए क्रूर मजाक को जानते हैं। उनका आग्रह नये माग और नयी तलाश का है—

"अब इस शुरुआत के लिए
प्रतीक्षा का समय नही है
जब कि लोग इस सन्नाटे और अधकर
और सीलन की कँपकँपी और ग्लानि से
निकल आने के लिए बेचैन हैं।
गरमी और रोशनी और खुले हुए मैदानों म।"

इसी के साथ कवि को वास्तविकता का पूण अहसास भी है—

"है कुछ अलाव के पास जगह
है तो लेकिन थोडी सी, थोड लोगो के लिए।"

हरीश भादानी अपने नये शिल्प और तीव्र अनुभूतिया के साथ इस सकलन मे प्रस्तुत हुए है लेकिन गद्य मे भी उनकी वही लयात्मकता है—'तार-तार होकर भी हँस जाने की लहकती मेरी हकीकत।" हरीश भादानी ने प्रगाढता और बेबाकी से अपने को व्यक्त किया है। उनकी अपनी आस्था है—

'बदलाव की हवा से ही हो जाए जो अस्थिपजर वे/पूज्य कैसे हो। समय के हमरूप न हो जो/उन्ह कैसा नमन/रेत पर खोजे/उन्हा के पाव पर रख पाव/क्यो चला जाए।"

और हमारे देश की यह सच्चाई जो सभी समस्याओं स विकराल है, लेकिन जिसका कोई हल नजर नही आता—

'दोस्त मेरे!
भारत एक कृषि प्रधान देश नहीं
कुर्सी प्रधान देश है।'

डा मदन डागा की इस कविता का बिहार के युवकों ने ज पी आन्दोलन

के दिनो मे पोस्टरो पर लिखकर एक हथियार की भाति प्रयोग किया था—
"बात बोलेगी, हम नही ।"

अपनी कविता "कितने दिन " की शुरू की दो पक्तियो मे ही मगल सक्सेना ने अपने देश व देशवासियो का अत्यन्त सटीक बिम्ब के साथ एक चित्रमयी फलक खीच दिया है—

"कितने दिन खीचेंगे ?
हम घोडे अकाल के रथ के ।"

अमर मेवाडी का आक्रोश के साथ वस्तुस्थिति का अहसास—

"अब सहानुभूति के शब्द
खोखले लगने लगे हैं
और तेजाबी कविताओ का अर्थ
नपुसकता का बोध कराता है ।"

पूर्णेन्दु, जो इस सकलन म हेमन्त शेष के साथ दो युवा कवियो म से है वही महसूस करते हैं जो उनसे पहले की पीढी ने किया है—

"विश्वास जग खाता जा रहा है
आस्थाए जल रही हैं
नाक आँखो के आगे आ गयी है
अब दिखाई कुछ नही देता
सभी के सिर झुके हैं
गरदनें झुकने लगी हैं ।"

डॉ० जयसिंह नीरज इसी क्रम मे देहाती स्वर की प्रखरता के साथ कहते हैं, और ठीक ही कि—

" क्या करेंगे ? क्या करेंगे !!
बोल कवर इसी प्रकाश का !!!
एक दिन यह भी
पगडडियां नापता राजपथ
की ओर खिसक जायेगा
हमे अँधेरे में छोड़कर

रणजीत की कविताएं पहले जमी भी हैं, भिन्न भी। या तो स्थापित कवि भिन्नता नहीं चाहेगा या फिर वो जो भिन्न लिख ही नहीं सकता। रणजीत में दूसरे रंग भी हैं। उनके रूमानी, भाव-प्रवण स्वर को आसानी से पहचाना जा सकता है। पत्नी प्रेयसी को सम्बोधन, प्यार की उकताहट और शादी के बाद की ऊब भी उनकी कविताओं में मिलती रही है। यह कोई 'माइनस पॉइंट' नहीं बल्कि रूपान्तरित जिन्दगी का ही एक कटु अहसास है। फिर भी रणजीत के जीने का आग्रह और वह भी दो छोरों के बीच अधिक स्थायी महत्व का विषय है—

"मैं न तो किसी के प्रचार विभाग का पोस्टर बनकर
भीड़ में बेनाम खोना चाहता हूं
और न कोई महामानव बनकर उस पर इस तरह छा जाना
कि लोग मेरे उद्धरणों की किताबें अपनी जेबों में रखें
और उनमें से देखकर चलें अपना रास्ता।

इन दो छोरों के बीच जो लम्बी चौड़ी जगह है
मैं उसी के किसी कोने में
एक इन्सान की तरह जिन्दा रहना चाहता हूं।

विशेष भिन्न और दर्शन के धरातल के कवि इस संग्रह में हैं— नंद किशोर आचार्य। उनकी अपनी पृथकता है, संवेदनशील अनुभूति है। प्यार दर्शन और जिन्दगी की सांधी-सी गंध आती है उनमें। यह शुद्ध कविता हो सकती है, ताजी भी —

मुझसे तो अच्छी रही
वह मोरपांख
जो तुम्हारे मुकुट पे चढ़ी
और न भी चढ़ती
पर जिसका सौन्दर्य
उसका अपना था।'

इसके विपरीत एक दूसरा अनुभव—

"यदि मान भी लूं
कि पाप ने मुझे ही डसा
तो तुम्हें क्या हो गया था
जब वह मेरी ओर आ रहा था।"

× × × ×

अ त मे फिर यही निवेदन करना चाहूँगा कि कवि और कविता को व्याख्यायित करना न केवल जोखिम का काम है अपितु मुश्किल भी । कॉलरिज का कहना ठीक था कि किसी कविता की सबसे अच्छी व्याख्या उसे ठीक से पढना है। कलासरूपी कविता की व्याख्या उसकी रूहानियत को खत्म प्राय कर देती है। मैक्लीश की 'आस पायटिका' की सारगर्भित पक्ति से अपनी बात समाप्त करना चाहूगा

"कविता का चाहिये अथ न दे
(वह) केवल हो ।"

यदि कविता होगी तो उसमे अथ व सार होगा ही।

पुरानी भिनानी
बीकानेर

योगेन्द्र किसलय

नन्द चतुर्वेदी

जन्म 21 अप्रैल 1923 ई०
विद्याभवन रूरल इन्स्टीट्यूट, उदयपुर में अध्यापन। हर दौर की कविता से जुड़े। समर्थ कवि के साथ साथ अच्छे समीक्षक भी। बिंदु (अब बन्द) के सफल सम्पादक।

'राजस्थान के कवि' (भाग 1) का 1964 में सम्पादन। नन्द चतुर्वेदी यानी प्रांत के अग्रिम पंक्ति के सृजक सम्पादक और समीक्षक।

सम्पर्क रूरल इन्स्टीट्यूट, उदयपुर।

चार कविताएँ

एक

आदमी की इच्छाओं को पहचानने की गणित
सीखने के लिये
किन मदरसों की जरूरत है ?
किताबों की इबारत केवल
शुतुरमुर्ग पढ़ते हैं
और फिर धूप की तरह गरम
हवा की तरह फैले
आकाश की तरह खुले पंख वाले सत्य को
दबा कर रेत में सिर घुसेड़ लेते हैं।
अर्थशास्त्र आदमी की चुटकी में है
रोओं और भाषा में
और वे किस तरह मेरा हाथ दबाते हैं—इसमें
मेरी त्वचा समझती है कि
अर्थशास्त्र की धार तेज है या जंग लगी हुई।

आदमी न जाने कहीं
बैठा रहे, बोये, काटे, चले
धुँधलकों के बीच अंधेरों में
रोशनी में—इससे क्या ?
वह समझता है अपना हक।

वह दात पीसता है, वृक्षो की टहनिया तोडता है
हाथ लगाता है
तब ऋतुचक्र अपरिचित ऋतुओ की
रचना करता है
अग्निवर्णा पुष्प गुच्छो की।
इन्ही उदास मौसमो के बीच
घूम आना क्या है ?
सडके कहा हैं—है
यह दिनो, महीनो की लौट-पीट
शिशिर, हेमत, वसत और उलटे

-

कोई अकल्पित ऋतु आये
इन्ही बँसवटो से
हसने और गरम होने की ऋतु
बहे, घाटी दर घाटी
शिला दर शिला
आदमी अपनी इच्छाओ का हिसाब
न लपेटे, इन फटे पुराने चिथडो मे
न लटकाये जुबान
मुर्गे की तरह न ढूँढे दाना
बेसब्री और बेकली मे
मुझे जुग और इस देह के आर-पार
और अतरग मे समझ लू मै
वह गर्मी, वह स्पश
फिलहाल वह मौसम जहा हो
मै उसी मौसम की रचना
उसी मौसम की तलाश मे
तुम मे रहूँ न रहूँ
बधा हुआ हूँ—

दो

अब इस शुरुआत के लिए
प्रतीक्षा का समय नही है
जब कि लोग इस सन्नाटे और अधकार
और सीलन की कँपकँपी और ग्लानि से
निकल आने के लिए बेचैन है
गरमी और रोशनी और खुले हुए मैदानो मे ।

कितने रास्तो पर उन्होने हमारे लिए
हाथ उठाया था
हमने समझा वह एक सकेत है
आम सकेत की तरह–विश्वास और
नयी रचना का सकेत
लेकिन वे क्रूर बाजीगर थे
वे समय के सारे रास्तो पर खडे थे
अपने वक्ष पर उन्होने हमारी गर्मी
हमारी लालटेने ले ली थी
हम उनकी इच्छाओ के लिए शिशु थे
छोटे और नादान और उनके खेल के लिए
जन्मे ।

लो अच्छा हुआ
सूरज अस्त होने के पहले हम इकट्ठे हो गये
उनकी हत्याये और हर चालाकी के
खेल को खत्म करने के लिए

हम से कुछ छिपा नही है
मनुष्य कस्तूरी मृग की तरह घास नही ढूढता है
जहा से गध जन्मे
कही से भी हथेलियो से, अंगुलियो से
शरीर मे फैली शिरा, रक्त से वह जानता है ।

इस अनाघ्राता कस्तूरी गध के लिए
उसने अपनी पीठ पर ढोये हैं इन तमाम
सौदागरो के बारदान और भूसे की बोरिया

समय आ गया है
लोमडियो की तरह दुबक कर चलने
और चालाक होने का नही
किन्तु अपने रक्त की गर्मी
और प्रवाह और अस्तित्व की सचाई के लिए
निकल आने का
और आदमी के दबे हुए वक्ष से
ताप जलाने का
और उस सब के विरुद्ध
हाथ लगाने का
जो आदमी को छोटी और चालाक
लोमडी बना देता है।

तीन

ज्योतिषियो से भाग्य पूछने की जरूरत नही है
एक उखडे हुए समुद्र को मुट्ठियो मे बाधने वाले लोग
नजर बचाकर बदगी कर रहे हैं।

एक उदास मौसम के लिए
सब ऋतुओ का सूर्य
करीब-करीब एक सा है
सब नदियो का उद्गम और बहाव
और अन्त
मुझे मालूम है।

क्या होगा यदि कल एक सिपाही
सेनापति, सामन्त, कवि, गणिका याकि
किसी गैर की कास्य प्रतिमा
कही खडी कर दी जायेगी ?
लोगो को पास पास बैठकर
पत्थर फकने का अभ्यास हो गया है

अक्षरो के मोड, उनकी इबारत
और एक और अर्थ—
अब किसी भाष्यकार की जरूरत नही है

पास मे न कोई झरना है न खिडकी
औरतो की नजरें अर्थ हीन हो गयी हैं
मीनारो पर चढकर अदने आदमियो ने
आत्महत्या करली है
मानसूनी बादल और रहस्य के ताल-
सरोवर ढूढने वाले सज्जनो
सुनो !
हेल सीजर ! सीजर दी ग्रेट
और अभी अभी आम रास्तो पर
बेशुमार इकट्ठी हुई भीड
एक थरथराती हुई मोमबत्ती की रोशनी
बुझती हुई निकल जाएगी।

चार

कितने पास से हवा गुजरती है
लेकिन रोमाच नही होता
सिर्फ सशय होता है

सब कही लोग देखते है
कुछ हिल रहा है
कही कोई शाख कोई पत्ता
कोई तार
हा, हिलता तो है
लेकिन इससे क्या ?

जमा हुआ समय लौट सकता है
वहा कील से ठुका हुआ है अधकार
आदमी को पर्त दर-पर्त ढूढना पडता है
जहा वह सिर्फ एक तहखाने की
सीली हुई मिट्टी होता है
या एक मृत्यु

कितने पास ही रखी हुई है आग
लेकिन यहा शिशिर, हेमन्त और भूख
की बर्फ कब पिघलती है
सशय से बीमार और जद पीले लोग
देखते हैं
है कुछ अलाव के पास जगह
है तो, लेकिन थोडी सी थोडे से लोगो के लिए
तब अस्वीकृत आदमी का
इस मिट्टी में जो होना हो, हो।
भाग्य जहा कापता रहे कापे
सूखे, जले, या वह जाय
आग के लिये इस अलाव या उस अलाव
तब और जाय

कितने पास से गुजरती है नदी
अपने जल के पुराने केंचुल छोड़ती हुई
कच नीले जल वाली नदी
लेकिन रोमाच नहीं होता
सिर्फ सशय होता है
किसे देगी नदी अपना जल
बस उन्ही को जो नदी के है
तब हम यही बैठे रहें उदास
तब उन्हीं सूखे और सपाट होठो पर
या कि इन ग्राल के ऊँडे गड्ढो में।
तृषातुर जिन्दगी चक्कर लगाती रहे

कितने पास मे गुजरता है इनिहास
लेकिन किसका ? भाग्यवान लोगो का
न शूरों का न पडितो का

तब मैं इन्तजार करते हुए लोगो के पास
जाकर क्या कहू
तुम्हारे पास हवा है, ग्राग है, नदी है
इतिहास है
तब भी सशय और फरेब और समय के मारे हुए
लोग उठेंगे
और बाहर की बहती हुई हवा को छुएँगे ?

यह फैसला ग्रत तक जाने के लिए नही
सिर्फ शुरू करने के लिए है
जब कि लोग कुछ नाराज और बेचैन है
और जरूर
वे हवा और आग और नदी तक जाना पसद करेंगे

●

डा रमासिंह

जन्म 1927 ई०। शिक्षा-एम ए (हिन्दी), एम ए (राजनीति शास्त्र), एल एल बी 1963 से जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रीडर। समाज कल्याण की अनेक संस्थाओं से सम्बन्धित रही है। नागपुर तथा मारीशस के विश्व हिन्दी सम्मेलन द्वारा 'सारस्वत सम्मान' से सम्मानित।

प्रकाशित कृतियां— समुद्रफेन (काव्य संग्रह)। यह संग्रह उत्तर प्रदेश सरकार से पुरस्कृत हुआ। 2 'प्रक्रिया' में कविताएं संकलित (सवक्तव्य)

सामाजिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन।

सम्पर्क रीडर, हिन्दी विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर।

धूप

धूप
नहीं
सोने
का
झरना है,

कठिन इसे
गागर
में
भरना है,

रेती पर पानी का
रूप लिए फिरती है—
किरन नहीं
कंचन
का
हिरना है—

शायद
मृगतृष्णा है।

साहित्य सर्जना

नन्हे नन्हे फूल
लिख रहे हैं लघुकथाएँ
ओस की बूँदो मे
प्रतिबिम्बित व्यथाएँ

ऋतुओ ने लिखी हैं
धारावाहिक कृतिया
पतझर ने लिखे सस्मरण
झरती पत्तियो मे
अकित स्मृतिया

प्रवहमान झरने
प्रवन्ध काव्य रचने मे व्यस्त
गीत-कार विहग
लय-तान के अभ्यस्त

सक्रान्ति

कभी लगता है
यह रास्ता हमारा नही है
और कभी यो
कि शायद
हम इस रास्ते के लिए नही है

या तो यह रास्ता गलत है
हम सही हैं
या फिर हम गलत है
यह रास्ता सही है

हो सकता है
हमी ने गलत मोड ले लिया हो
या फिर सभव है कि
शायद गलत रास्ते ने हमे
तोड दिया है

यह भी
एक सक्रान्ति है जीवन की
कि गलत और सही को
इस तरह जोड दिया गया है

यदि—
सघर्षो मे तराशा हुआ मन
हीरे की कनी बन जाय
धूमिल दृष्टियो को उदात्त कर जाय

यदि—
अन्तम् की पखुरियो मे
कसी हुई वेदना
गन्ध बन कर डोले
हवा की लहर लहर पर
समर्पित हो ले

यदि—
विपत्ति के तप मे
तपायी हुई हड्डिया
वज्र का रूप ले लें
हिंसा के दैत्य को सहारने का
दायित्व झेले

तब कही—
अर्थ मिले अस्तित्व को ।
पूर्णता मिले व्यक्तित्व को ।

डा० जयसिंह नीरज

जन्म 1929। शिक्षा—एम ए पी-एच डी (हिन्दी)। एक लम्बे अर्से से लेखन मे सक्रिय। 'साहित्यिकी' एव 'कविता' का सम्पादन। यायावरी प्रवृत्ति। शास्त्रीय सगीत एव राजस्थान की चित्रकला म विशेष रूचि। चित्रकला सम्बन्धी अनेक लेख प्रकाशित।

प्रकाशित कृतिया—1 नीलजल सोई परछाइया 2 दुखान्त समारोह (दोनो ही कविता सग्रह)। 3 राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य।

सम्पर्क प्रिंसिपल, राजकीय महाविद्यालय, सवाई माधोपुर।

ढाणी का आदमी

वह बहरा ही नही
      गू गा हुआ बैठा है ।
कलकलाती दोपहरी मे नीम के नीचे
दो घटे अपनी घुसकाल से
उसे जबरदस्ती खेदा गया है
डरी हुई आखे और बुझे हुक्के सा
सर लटकाये वह
एक जलते पत्थर को बैठक बनाकर
एक अरसे से उकडू बैठा है ।

बहरहाल ढाणी के नग धडग बच्चो का
हुजूम रेंट सुडकता सबसे पहले
तमाशबीन सा आ लगा
क्योकि उसे कान काटने वाले और
झोली में डालकर ले जाने वाले
के अलावा और कोई डर नही
न पटवारी का, न लेवी वसूलने वाले का,
न गाव के ठाकुर का
याकि जगलात के मुसद्दी और
दान मागने वाले पडत का ।

मेरी पेंट और बुशर्ट से विदक कर
यह बुझा हुक्का
सीधा पहाड चढ सकता था
शेर से भी अधिक डरता है वह

नाजिम से।
पर एक घन्टे स अपनी
घुसवाल से ताव झाक कर उसे
तसल्ली है कि यह तो
भाट्टर जी ा कवर है
जो बचपन म साथ जोहड म ाहाता था
और डगर चगाता था।

वह सुल्फी की दम मार कर
अपने मे साहस बटोरता है
और अनगढ भाषा म पढने लगता है
मेरे मुखौटे को,
गाव म खुलने वाले मिडिल स्कूल
की चर्चा सुन
दाढी बढे हुए चेहरे और पीले दातो का
भूगोल कुछ और फल जाता है।

क्या करेंगे हम इत्ती जोत ा ?
भेरु खेतरपाल और माता के मड मे
जलाये हुए दीये अपनी अपनी सुविधा देख
अधेरे मे पगडडी और सडक नापते
राजपथ पर पहुच गये
वह ढाणी अधकार मे फिर
भाय भाय करती रही।

क्या करेंगे इत्ती जात का ?
थोडा घी और छछूदर डाल कर
जिस दीप को जलाने रह
वह भी हम अधेर मे छोड
उसी पगडडी पर लपक गया
हम पीटते रहे पूरब का द्वार।

उसने जहर के घूट की तरह
सुल्फी के दम को घूट लिया
अपने भरभराने सीने मे
और गठड़ बैठक मे गुस्मैल साड सा
नथुनो मे धुआ फैंकता हुआ
बकारने लगा

क्या करगे ? क्या करेंगे !!
बोल कर क्या करेंगे इस प्रकाश का !!!
एक दिन वह भी
पगडडिया नापता राजपथ
की ओर खिसक जायगा
हमे अधेरे म छोड कर।

०

वह लट्ठ लिए घूमता है
अरने भैंसे सा
डराता और धमकाता है सभी को।
सूरज की ओर जाने वाली पगडंडिया
बद पडी है
वह अपने को ही सूरजसिंह कहता है।

भय और त्रास के बीच झुलते हुए लोग
घबराते है हादसे से
पुलिस और कचहरी से
हा मे हा मिलाते है
और अपने ही मे मर जाते है।

बगल मे पिस्तौल लगाए
वह मू छो पर बल लगाता है
अपने सत्य को सब पर लादता है
मारू गा। काटूं गा।।
ऐसा नही होगा, वैसा नही होगा
गू जते रहते है रोज वही वही शब्द
मु ह अधेरे ही लोग खेतो म
और साभ पडे घरो म
घुस जाते हैं
धक्क धक्क जलती हुई कऊ
सवाद हीन धु वाती रहती है।

हर शहर ग्रौर कस्बे म
कहीं है 'वह'
पकडलो, बाध लो
र पुलिसवालो की तरह
उत्तर की ग्रौर भागते है
क्योंकि डाकू कूच कर गये है
दक्षिण को
सचमुच स्याऊ का मुह पकडने के लिए
अब भी बहुत कम लोग तैयार है।



पोस्टर

शाही खजाने से फेंके गये
शब्द
पोस्टर बनकर चिपक गये हैं दीवार पर
और शब्द वहीं से घूरने लगते हैं।
आदमी उन्हें देखता है
मुंह बिचका कर चल देता है
पर शब्द भीतरी तह तोड़ कर
आदमी की तंग गलियों में
चक्कर मार आते हैं।

बार बार पोस्टर देखकर
वह आदमी अपने हथियार डाल देता है
शब्द उसका मुस्करा कर स्वागत करते हैं
और वह ढोने लगता है एक बोझ।

समय असमय अकेले में वह
उस पोस्टर के शब्दों को
गली में भ्रूण की तरह
फेंक कर दौड़ पड़ता है
तंग और अंधेरी गलियां में
चकराता हुआ वह
जनपथ में अपने घर आता है।

भय से मुड़ कर देखता है
और आश्वस्त होकर
कपाट भेड़ लेता है

दिमाग की सलवटें ठीक कर
वह निढाल होकर पलंग पर लेटता है
परिवर्तन के लिए खोलता है रेडियो
यह आकाशवाणी है
टिकाऊ जिंदगी के लिए
जरूरी है परम्परा से चिपके रहना,
फिर वही पोस्टर के शब्दों को सुनकर
वह उछल पड़ता है
और कमरे में
चक्कर काटने लगता है।

आदमी की खोपड़ी हो या नारियल
पर इतना है खोपड़ी का तनाव
ममभेदी चीत्कार में बदल जाता है
थरथराती हुई एक लौ
सीने के पार गुजर जाती है।

भागते हुये खरगोश का
झाड़ियों में लहूलुहान
कातर आँखों को
सख्त चेहरे की ओर ताकते
जंगल बूट का सोल
गर्दन पर आजमाते
और धीरे धीरे गले की
घरघराहट में दम तोड़ने देखना
भला किसको पसन्द आ सकता है
आ सकता है। आ सकता है।।
एक साजिश भरी शैतान पीढ़ी को।

जंगल में हाका कर जानवरों का
फँसाने की आदिम लालसा
नियाफा से लेकर वियतनाम तक
के जंगल में हाका करते शिकारी
कबूतर का फड़फड़ा कर खूनी धूल
में कलावे लेना

भयाक्रात मुर्गाबियो की काय काय
अतड़िया झाड़ियो मे फसाते खरगोश
घायल शेर जीभ निकाल कर
झुरमुट मे हाफते
डया ड्या करते हुए अधमरे
हिरन, गेंडा और बारहसिंगे।

आग लगी है जगल मे
बिलो मे छिप-जीव कुरमुराते
किसको पसद आ सकता है
हड्डी, मास, मज्जा, खून और
खून का चिटख चिटख कर जलना
आ सकता है! पसद आ सकता है!!
एक साजिश भरी शैतान पीढ़ी को।



हरीश भादानी

जन्म—11 जून, 1933 (बीकानेर)। साहित्यिक उत्कर्ष एवं सामाजिक प्रगति से विद्यार्थी जीवन से ही जुड़े। घर फूंक तमाशा देखने वाले हरीश भादानी यानी 'एवरी इंच ए पोयट'। 1961 से 1973 तक 'वातायन' का निकाला जिसे देश की प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका के रूप में स्वीकार किया गया। अखबारों में काम घर चलाने के लिए नीरस नौकरियां भी की। अभी तक प्रौढ़ शिक्षा, बीकानेर में थे। सुना है अब वहां से छुट्टी हो गयी है। गम मजबूरी के दिनों बम्बई, कलकत्ता जाकर पत्रकारिता व सम्पादन का काम कर आते है। विचारधारा से मार्क्सवादी।

प्रकाशित कृतियां—1 अधूरे गीत 2 सपन की गली 3 हंसिनी याद की 4 सुलगते पिण्ड 5 उजली नजर की सुई (राजस्थान साहित्य अकादमी से पुरस्कृत)।

सम्पर्क—छबीली घाटी, बीकानेर।

नारायण की अस्वीकृति

मैंने तो नही चाहा / रचा जाए फिर से कोई अन्य नारायण /
मैं नही हूँ / सशयो मे सतप्त / नर / कौन्तेय /
मेरे होने / धडकते रहने की अपनी आयते / ऋचाए है
जिनकी हिज्जे किए बिना फैला दिया जाए / शून्य
तक को भेदने उठा दिया जाए रचाव /
जिसकी नीव का पत्थर न हो मेरी हथेली / सम्बोधन
ही कसे दू उसे / जोएषणा / जी वेषणा मेरी नही / उसे
मैं सास कसे लू / कैसे कहूँ उसे अदृश्य का द्रष्टा / कैसे
अगुआऊ / रखे गए अव्यक्त का यही है व्यक्त /
उडाया ही उडाया गया / आकाश ही बने रहने / आखिरश
हो ही गई मुझे पहचान अपनी / सूरज के रू ब रू होकर
झुलसती / पपडियाती / पसरी हुई धरती हूँ मै / जिसे
मुट्ठिया भर-भर उछाल रगे जाते क्षितिज / उकेरती जाती
दिशाए /

लो / मैने भी हिमालय को चढा दिया हे शख / झालर
थमादी है अतीत को मैंने / सोच के बयाबा से कभी
का आगया बाहर / उठे है पाव जिस ओर / वह सीध
मेरी है / फटेगी यवनिका / वह दिशा सुनिश्चित है /
प्रत्यचा / तूणीर / कर्म का महात्म्य जो भी बाचे / वे सुन /
न मेरे चेहरे को जरूरत है कि रग पोते / न मेरे भीतर
मुवा हुआ कोई अहम कि आकाश का विराट औचक
देखता जाए /

इन हाथो ने यू बरती है छैनी / तगारी / करनम
कि आदमकद होकर रह गया है समय / यही

है मेरा आज / यही मेरा अनागत / यह मुझे से /
मैं इसी से / गूंजता अतलान्त तक उत्ता यज्ञ अभिनव /
वक्र की फनगिया जो भी जोर / ले गया / दग /
अलगजग उठता यह आज / अपने अनागत को
अपने ही रद मे आकार देके / आंकिया पीता है /
धुन गाता है / और रोजता है /
मैं किसी मैदान म हथियार त्यागे / हाथ बांधे
वृहन्नला हो गया / अर्जुन नही हूँ मैं / और मेरे सामने
रचा गया ह जो भी नव्य नारायण / वह मेरा नही /
कन्हई मेरा नही /

एक और एषणा

हमेशा की तरह / आज भी उतार फेंकी है अपने ऊपर की चटाई / चुराली है सोयी हुई मासूमियत पर से नजर / थमक कर पीछे न हो ने चलने की नन्ही सी आदत / बाध न ले मुझे तोतले गले का गीत /

लटका कर कमीज की जगह अपना प्यार / दबे पाव आ गया हूँ बाहर / देहरी बीच खडी है मेरी हकीकत / फैली है जिसकी आखो मे मेरी यह सराय / और भरे भरे हाथो लौटने की मेरी प्रतीक्षा / रूई के फोहे / सी रोटियो की गाठ / थमादी है मेरे हाथो मे / गुरुरगुरा होकर चल दिया हूँ मै / कूडे के ढेर मे ग्रद ही / सर्वव्यापी बना कर रख दिए गए सुख सवेरे की तलाश मे /

न दहकता हुआ सूर्य / न ही सुर्खिया फैकती दिशा ही आई है मेरे सामने / तैरते हुए गुम्बदो ताजियो का आकाश हो गुजरा है मेरे ऊपर से /
बीमार हवा और जद धूप से सूज आई आख
जब भी फिराई है चारो ओर / लोहे के जगल मे ही
पाया है खुद को / और भूझने लग गया हूँ दे दी गई
आग से / जो मेरी नही होती / जो भी बनता है / पिघलता
है मुझ से / निगल जाती है / सुरसा सरमायादारी /
पेट से दिमाग तक भभक उठती है अगोठी / फैलता हूँ
भीतर की ओर गोटियो के साथ ठडे दरवाजे / भीज
भीज कर पीटता हूँ मुर्दा आवाजे /

आज भी नही बनी है / मेरी यात्रा की तस्वीर / मगर
लोहे के जगल के जमादारो के पास हो गी है मशीन /

काट छाट कर / छोटी मीठी / बना लेते हैं मुझ से
दुहरती रहती ककशती आवाजें / रेंकता है मायरन
लाहे के दात आजाद कर देते हैं मुझे / जेबो / और
जोड-जोड मे तेजाब भरा देखने लगता हूँ मैं / मैदान मे खडे /
खाम प्रदाज को / बदलता है अपने तेंवर / मुझे अधेरा
ही अधेरा खिलाए जाने के खिलाफ / करता है
मुखालफत का नाटक /

हमेशा की तरह / आज भी खीच लेता हूँ उनके तेवर पर से
अपनी आख / जड लेता हूँ अपने कानो क किवाड / उन
तर्रार आवाजो के करीब और करीब होकर / फोड देता हूँ
धीरज का सुलगता हुआ अपना अलाव /
कागजो पर नही मढेगी मेरे सवेरे की तलाश / काच से
नही दिखेगी जिदा तकाजो से भरी मेरी सराय / यू नही
उतरेगी तस्वीर / तार तार होकर भी हस जाने को लहकती
मेरी हकीकत /

बोला भी है कभी / वक्त अपनी जबान / हुआ भी है उसका
काई शरीर / सुविधाओ के हाथ बनाते है सुइया और डोरे
और सिया करते है तेंवर तनाब /
ताडदी है मैने / धीरज की पाबदिया / पछाट / देखो /
दूर-दूर तक बिखर गया हूँ / क्या है तुम्हारे पास
कि हा जाऊ मै / हहरता हुआ एक समदर /

•

नमन केवल उसे

स्तूपा / मीनारो / से बनी ऊचाइया / इतिहस की
भूतात्माए होकर जिए जो / बदलाव की हवा से
ही हो जाए जो अस्थि पजर / वे पूज्य कैसे हो /
समय के हम रूप न हो जो / उन्हे कैसा नमन /
रेत पर खोजे / उन्ही के पाव पर रख पाव / क्यो
चला जाए /

मन बरफ का / सगमरमरी हो देह जिनकी /
किसी भी जुलाहे के बुने ही / पहनते हो /
गेरुए । रक्ताभ / पीताम्बर / क्यो छुए कोई
इस तरह की छाह / क्यो समर्पित हो कोई / यहा / वहा /
वह कोई हो / या फिर तुम / बोधने भर की ही सज्ञा /
सयोजा करे जो / अणु परमाणुओ मे / एक अ / क्षर /
रूप का आकार / आदमी से आदमी का शब्द /
आदमी का अर्थ होने का यतन /

ऐसी एषणा / तुम्हारी हो / तुम्हे मेरा नमन /
ऐसी निर्मिति / तुम्हारी हो / मेरा नमन /
अनागत का / आकारने की ऊर्जा तुम्हारी हो /
मेरा नमन / मनु को मनु का नमन /

●

जब लगता है प्रश्न प्रतीक पर

सास-सास रसकसती रहती रेत / अगुलियो से
होता रहता रचाव प्रतिमाओ का / सन्नाटे
के शिलाखण्ड पर / क्षण की छैनी / उकेर
दिया करती है भाषा / मै तुम /

मै-तुम / प्रतिरूपो से भी / वही वही तुतलाया करते /
आगन / गली / चौक जी जाया करते /
यही-यही लगता है / रगवती हो गई /
जिन्दगी की अभिलाषा /

ओ मै / ओ तुम / उसे भी कहदो /
जहा झुका करती है आख / अर्चना की /
वे होते है प्रतीक / प्रतिरूप / यही एषणा /
आज / अनागत यही /

प्रतिरूपो / और प्रतीको पर / जब जब
लगता है प्रश्न / तब तब / उत्तर की
खातिर अकुलाती हुई एषणा / बोला करती /
बिना राग / आलाप / जिया जाता है कैसे /

•

रामदेव ग्राचार्य

जन्म-जून, 1934 शिक्षा-एम ए (अंग्रजी) प्रसिद्ध कवि एव समीक्षक । कहानिया भी लिखी है।

प्रकाशित कृतिया—समवेदन इति (सहयोगी कवि) । 2 अक्षरो का विद्रोह (कविता सग्रह) 3, त्रयी—1 (डा० जगदीश गुप्त द्वारा सम्पादित तीन कवियो का सग्रह) । 4 मोन रो सूरज (राजस्थानी कविता सग्रह) ।

प्रगतिशीलता, स्वस्थ मानव-मूल्य एव साहित्यिक गरिमा के पक्षधर ।

सभी पत्र—पत्रिकाओ म रचनाए प्रकाशित । मार्च, 77 स अगस्त, 77 तक मधुमती' का सम्पादन ।

अभी डूगर महाविद्यालय, बीकानेर म अध्यापन ।

सम्पर्क जेल के कुए के पास, बीकानेर

महाभियोग

विस्फोट के धमाके की तरह
मेरे दिमाग को फाड़कर
गलियों, सड़कों, फुटपाथों पर
निकल पड़ी मेरी कविताएँ,
विवर्ण मुखमुद्राएँ धारण किये !

मेरी डायरी की लिपियों की
अंतड़िया चीर-चीर कर
आम रास्तों पर फैल गयीं मेरी कविताएँ,
गम हवाओं मे बाल बिखेरे, अस्त व्यस्त,
विद्रूप मुखाकृतियों के साथ !

उनके नेत्रों मे धूमकेतु
दहों म तपते तवे,
और रोम-रोम मे ऐंठते तनाव थे।
ऐसी अराजक मन स्थितियों म
जन-पथों पर बढ चली मेरी कविताएँ।

उनकी विक्षिप्तावस्था देखकर
उनके पीछे पीछे चल पडा
एक जिज्ञासु जन समूह
जो अपने आकार में
फलता गया, फैलता गया,
और फलता गया।

उत्तेजित आन्दोलित मेरी कविताएँ
उस विशाल जन मैदान मे जा पहुची,

जहां अमूमन
राजनीतिक आमसभाएं
आयोजित की जाती थीं।
वह समूचा विशाल मैदान
मानव-आकृतियों से
लबालब, खचाखच, ठसाठस भरकर
जन-समुद्र के रूप में हिलोरें लेने लगा।

विशाल जन-मञ्च पर चढ़ गयीं मेरी कविताएं
फिर एक साथ
अपने वस्त्र फेंक-फेंक कर
इस क़दर विवस्त्रा हो गयीं
कि अनेक समझदार आंखें
लज्जा-भार से धरती में धंस गयीं।

निर्वसना कविताओं में
सबसे उग्र एक कविता ने
ऊंची आवाज़ में अपना बयान जारी किया —

एक कोरे कल्पनाशील कवि की
रक्तचाप होंन हम दिमाग़ी कविताएं
अपने स्रष्टा के दोहरे व्यक्तित्व के ख़िलाफ़
इस दरबारे आम में
अपनी सामूहिक हत्याओं का
महाभियोग घोषित करती हैं।

"हमारा स्रष्टा हमारे मुखों से
क्रांति और विद्रोह के शंख बजाता रहा
और अपने जीवन में
अपने मुख से
एक शर्मनाक, समझौतापरस्त
भाषा का उच्चारण करता रहा।

हमारे माध्यम से
वह व्यवस्था से युद्ध करने का

नाटक रचता रहा,
और अपने जीवन में
आत्म-समर्पण के दाग-हीन सन्धि-पत्रों पर
हस्ताक्षर करता रहा।

एक चालाक हमदम के साथ
वह हम अपनी 'सचाइयाँ' कहता रहा
और अपनी कायरता को
'परिस्थिति' कह कर
आत्म-रक्षा के कवच खोजता रहा।

अपने स्वप्नों की इस दोगली नपुंसकता के खिलाफ
हम उसकी खोखली जोशीली कविताएँ
इस दरबारे आम में
सामूहिक आत्म-हत्याओं का निर्णय लेती हैं,
और जन-अदालत से गुजारिश करती हैं
कि इन हत्याओं की न्यायिक जाँच करायी जाय,
तथा अपराधी के लिए
कठोर-से-कठोर
दण्ड-विधान की व्यवस्था दी जाये।

यह बयान देकर उस उग्र कविता ने
सभी विवस्त्रा कविताओं को
एक नेत्र संकेत दिया,
और फिर असंख्य आँखों के सामने,
असंख्य हाथों के मना करने,
असंख्य शब्दों के टोकते,
वे विक्षिप्त, विरूप कविताएँ
अपनी चमचमाती अंगूठियों से
हीरे की कनियाँ निकाल निकाल कर
सामूहिक रूप से एक साथ निगलने लगीं,
और तड़प-तड़प कर पछाड़ खाती हुई
उस विशाल जन मंच पर
धड़ाम धड़ाम गिर गिर कर
लाशों के रूप में पसरने लगीं।

असख्य डबडबायी आंखे
पश्चाताप और शर्म मे घुलती हुई
इस ट्रेजिक अत को देखती रही,
और फिर एक दिली नफरत के साथ
भीड के असख्य चेहरो मे
अपराधी चेहरो को तलाशने लगी।

●

रचना का जन्म

जब-जब लिखने बैठता हूँ
सारे जिस्म का खून
उंगलियों की पोरों पर जमा हो जाता है।
सारा अस्तित्व
एक अप्रत्याशित रोमांच से तरंगित हो जाता है।
दिमाग के पर्दे पर
भूली-बिसरी यादों के
छाया-चित्र उतरने लगते हैं।
बीते दिन पहाड की तरह सामने खडे हो जाते हैं।
आंखों में सूरज उतर आता है।

नस-नस मे विस्फोट होने लगता है।
शिराओं में गर्म लावा भर जाता है।
पिघले हुए लोहे की तरह
शब्द पन्नो पर फैल जाते हैं।
एक-एक क्षण एक-एक अवधि बन जाता है।

ऐसे समय कोई बदशक्ल,
कोई बेईमान चेहरा
मेरे सामने आने का साहस नहीं करता।
गरदन झुकाये सारे 'विलेन'
हाथ बँधे अपराधियों की तरह
रचना के दरबार म खडे हो जाते हैं।
सारे शिखंडी
राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय आवरणों से
नंगे हो जाते हैं।

आदमी और आदमी के
फासले सिमट जाते हैं ।
झपटी गिद्ध लाशों से हट जाते हैं ।
चींटियां घर बसीटना छोड देती है ।
बिच्छु का डंक कट जाता है ।
सापो की विषैली थैलिया फूट जाती है ।

अपना बोझ अपना दर्द
सबका बोझ, सबका दर्द बन जाता है ।
मेरा 'मैं'
और तुम्हारा 'तुम'
पीछे छूट जाते है ।
समूचा आदमी कागजों पर उतर आता है ।
जब-जब लिखने बैठता हूँ
सारे जिस्म का खून
उंगलियों की पोरों पर जमा हो जाता है ।

प्रतिशोध एक रूपक

बर्बरों ने उस दिव्य औरत को पेड़ से बाध रखा था।
उस रूपवती आदि शक्ति के हाथ पाव रस्सियो मे जकडे थे।
उसके परिधान तार तार करके जर्जर कर दिये गये थे।
उस मर्यादा ज्योति की आबरू लूटने का हर सम्भव प्रयत्न
किया गया था।

तेजस्वी औरत के मुह पर काली पट्टिया बधी थी।
(ताकि उसकी वाणी पर प्रतिबन्ध रहे।)
उसे चाबुक मार मार कर डराया जा रहा था।
समवेत स्वरो म यह घोषित किया जा रहा था
कि वह औरत विक्षिप्त है। गूगी है। बहरी है। सनकी है।

बर्बरो ने उस औरत के होश हवास उडा दिये थे।
उन जगली लोगो के दिमागो म सीग उगे हुए थे।
जीभ से झूठ का साप मणि प्रकाश फेक रहा था।
मन म पाप का समुद्र साजिशो के ज्वार-भाटे से
आन्दोलित था।

कमर से ऊपर की देह एकदम निर्वसन थी।
नीचे का शरीर पशुचर्म से, या घास फूस से
या वल्कल वस्त्रो से ढका था।

जगली लोगो के हाथो म पैने औजार थे।
विजय के उन्माद भरे माहौल म मदमस्त होकर
वे भिन्न त्यौहार मना रहे थे।

उनके मन मे षडयन्त्रों का जलजला था।
वे चालाकी के साथ कानून से खेल रहे थे।
उनकी अभिलाषा उस दिव्य औरत के अस्तित्व को
रौंद-रौंद कर, कुचल कुचल कर फेंक देने की थी।

दिव्य औरत के चेहरे पर आत्म विश्वास का बल था।
आखो मे अतल गहराई थी।
होश-हवास हीन थकान के बावजूद शरीर मे गति थी।
मन मे दीप शिखा सी प्रज्वलित आस्था थी।
उसे विश्वास था कि एक दिन मुक्ति-कारवा
अस्मिता की बहार लिये इसी रास्ते से गुजरेगा।

जबकि बर्बर लोग विजय दुन्दुभि बजाते हुए
अपनी साजिशो की सफलता पर एक-दूसरे का
स्नेह आलिंगन कर रहे थे
कि मुक्ति कारवा आ पहुचा।

बर्बरो ने बच निकलने के अनेक नाटक किये,
पर उन्हे सचाई की बलिष्ठ भुजाओ ने अपनी
गिरफ्त मे ले लिया।

दिव्य औरत को बन्धन मुक्त कर दिया गया।
मुह से काली पट्टिया हटा दी गयी।
उस अपहृता के पावन चरणो को छूकर
कारवा के नायक ने श्रद्धा भरे स्वरो मे कहा
"देवी! अपना परिचय देकर
मेरे अनुयायियो को कृतार्थ कर।

उस दिव्य औरत ने कहा
'मै मानव मन की सम्पदा,
और अनुभूति की अभिव्यक्ति हूँ।
मेरा नाम कविता या कि कला या कि संस्कृति है।
मैं अनश्वरा, अजाता, अमाया हूँ।

मद हास्य के साथ उस दिव्य औरत ने कहा
"जन-नायक ! इन बर्बरों को उन्मुक्त विचरने दो।
ये अपराधी हैं, पर अज्ञानी हैं।
खूँखार हैं, पर नादान हैं।
एक दिन ये स्वयं अपने पाप-बोध से अभिशप्त हो जायेंगे।
हजारों फन फैलाये, सींग उठाये,
इनके पाप एक दिन स्वयं
इनसे भयंकर प्रतिशोध ले लेंगे।



एक लेखक का वसीयत

मुझे काले हाशियों के
फैशन मे न सजाया जाय !
सस्मरणों विशेषाकों के कंधों पर
मेरी अर्थी को न उठाया जाय !
जिन्दगी जिया हूँ मै
एक गुर्राते हुए भेडिये के सामने
शिकार की शक्ल मे बिछे मेमने की तरह !
मरने के बाद मुझे
शेर की खाल न ओढायी जाय !
मेरा परिचय देगे
तग रास्ते । बन्द कमरे । सस्ते होटल ।
आकाशवाणी, सभा भवनो, रगीन मञ्चों से
मेरे गुब्बारे न उडाये जाये ।
मेरे नाम का हक हासिल है
मेरी ही जिन्दगी जानेवालो को,
कची सी एय्याश जुबानो से
मेरे चिथडे न बिखेरे जाये ।
मरू गा मै रोग भूख बीमारी से
गालिब निराला मुक्तिबोध बनकर,
राजनीति से कहो कि मुझे
भवन, भाषण या शताब्दी न बनाया जाय।
जो छोटी जिन्दगी जीते है,
वे छोटी मौत मरते है,
ऐसी अदना-सी मौत को
विराट् आडम्बर न बनाया जाय !

मगल सक्सेना

जन्म 14 मई, 1936 । शिक्षा—एम ए (समाजशास्त्र) स्वतन्त्र लेखक, पत्रकार एव रगकर्मी। राजस्थान साहित्य अकादमी के सचिव (दिसम्बर 1964 से मार्च 1968 तक)। प्रयोगशील चित्रकारो की सस्था 'टखमण-28' का सस्थापन तथा उसके तीन वर्षों तक अध्यक्ष। साहित्यकारो के मच 'वैचारिकी' के सस्थापक तथा प्रान्तीय सयोजक। नाट्य-सस्था 'त्रिवेणी' के अध्यक्ष एव प्रधान निर्देशक। विद्यार्थी जीवन से ही सघर्षशील, जागरूक व दृढचित्त सृजनधर्मी।

प्रकाशित कृतिया—1 कपट का सीना फाडो रे (कविता सग्रह) 2 मैं तुम्हारा स्वर (कविता सग्रह) इनके अतिरिक्त अनेक सकलनो मे कहानिया कविताए तथा नाटक प्रकाशित। बाल—साहित्य की अनेक रचनाए विशेषकर रगमचीय एकाकी व बाल-उपन्यास प्रकाशित।

सम्पर्क मगल निवास, प्रमुख डाकघर के पीछे, बीकानेर



हर वक्त सग होने का अहसास

हर वक्त सग होने का अहसास
बिना छुए, बिना गले लगाए,
अपने होने की अनुभूति तुम्हारे माध्यम से पाए बिना,
एक ऐसी यात्रा पर दौडते चले जाना,
जैसे बच्चा ठहरी हुई साईकिल पर बैठकर
पैडल चलाता रहे !

उन सब बदले हुए लोगो में मे
किसी को भी नही भूल पाना
और हर समय उनसे घिरे रहने का प्रत्याभास
फिर भी अकेला–अछूता–वेदना युक्त !
यह स्थितिप्रज्ञता नही है !–क्या कोई है यहा ?
कोई है मेरा अपना ? आसपास या दूर-दूर—
जहा तक मेरी चीख जाती हो, कोई आदमजाद मेरी आवाज
सुनता हो तो बोले—बतलाए—यह बस्ती है या श्मशान !

स्पर्श और गन्ध की अनुभूतियो से बोझिल
अपनी ही देह में भुतोलिये की तरह मडराते रहना
बेआवाज चीखते रहना, अनछुई नजर से ताकना !
बर्फ की पारदर्शी दीवार के पार खडे लोगो !
कोई तो इसे तोडो ! कोई तो इन्सान की गर्मी महसूस करो,
पिघलो और बह पडो ! या, तुम भी
मेरी ही तरह बोल रहे हो सुनाई नही पडता
मेरी तरह हरकत कर रहे हो
जो चोले के भीतर ही भीतर एक तिलमिलाहट है

जो यू ही धीरे धीरे, दोनो हाथ जोड़कर
नमस्कार की मुद्रा मे ढल जाएगी, और रोज
सुबह-शाम पेट के व्यायाम के लिए
सहयात्रियो से नि सग, निरपेक्ष, ओढ़ी हुई
स्थितिप्रज्ञता लिए, टहलने के नियमित क्रम म
जुट जाएगी !!

कविता

इससे तो कही अच्छा था
आस-पास कोई जगल होता
और मैं उसम निकल जाता !
पडा को अपनाता
डालियो मे गलबहिया डालकर झूलता
पत्तियो से बतियाता
झीगरो के साथ गुनगुनाता
या, मौन ही बैठा रहता,
परिन्दो से मसखरी करता
अधलेटे हिरणो के नर्म-नर्म पेट से कपोल रगडता
या, उनके रेशमी बालो मे होठो को छुपाकर
कोई गीत गुन गुनाता
भमो के सीगो से झूलकर जोर आजमाता
या, हड्डिया तुडवाता !
रीछ, भालू या शेरो की भावुक, तरल, मिचमिची आखो म
झाकता, वे थूथनी मेरे
घुटना से, मेरी जाघो से रगडते
अथवा गटक गटक मेरा खून पी जाते
मुझे फाडकर टुकडे-टुकडे करते, चट कर जाते !!
लेकिन, कही अच्छा था,
उसके ड्राइगरूम म बैठे, दो दिलो के बीच बनी दीवार पर
बातो का चूना पोतते रहने से कही अच्छा था,
आस-पास कोई जगल होता और मै
उसमे निकल जाता !

नगर का कोलाहल

नगर का कोलाहल कुहनी पर टिक कर
जब कभी सोता है, धीमे से चीख कर
अपना ही रचा हुआ
मूल्यों का अग्निपाश
कसने-सा लगता है
दीखता है भीतर एक सूखता समन्दर
और उभरता है उसमें से खण्डहर उदास !

पता नही किस समय, क्या करू गा मैं,
अनुभव के धब्बो से झाकता है रह रह कर,
एक मोह भरी प्यारी-सी सूरत का अहसास !
दीखता है भीतर एक सूखता समन्दर
और उभरता है उसमें से खण्डहर उदास !!

जब कभी सुगन्ध के सरोवर-तटो पर
बिसरायी बासुरी गूजता उभरकर
लगता है जैसे यू
कभी-कही बहकते थे, सासो के सम्मेलन !
भावना के पखेरू भी उडे थे मुक्त-गगन !
और हम भी आगन-भर भरभर चहकते थे !!

घिस गया आदमी बदलती हवाओ से
शायद ही चमकेगा
और कुछ रोज हमारे उन चेहरो का उजास !!
अनुभव के धब्बो से झाकता है रह रहकर
एक मोहभरी प्यारी-सी सूरत का अहसास
दीखता है भीतर एक सूखता समन्दर
और उभरता है उसमें से खण्डहर उदास !!

क्या यह स्वर भी ले लोगे ?

सब कुछ तो लूट लिया
क्या यह स्वर भी ले लोगे ?
हम सब की हथेलियों को तोडकर
निकलेगी जब तुम्हारी भाग्य रेखा
सड़को पर तने हुए बिजली के तारो पर
तुम्हारा ही नाम जब दौड़ेगा !
तुम्हारी 'सील' लिए घूमेंगे
जब तुम्हारे चर !
क्या यह स्वर
भी लेलोगे ?
सब कुल तो लूट लिया
मोह को मेरे घर भेजकर
छीन लोगे तुम सारे अस्त्र-शस्त्र !
ऋतु मीत बनकर जब आओगे
कसम देकर फाड दोगे वस्त्र !
वर्दी पहनाकर
इन आशा की लौ का आखिरी अक्षर
भी ले लोगे !!
सब कुछ तो लूट लिया
क्या यह स्वर भी ले लोगे ?

जुगमन्दिर तायल

ज"म 16 नवम्बर, 1936 ज"मस्थान-ग्रलवर। शिक्षा–एम ए (हि"दी) 1958 से राजर्षि महाविद्यालय, ग्रलवर मे हिन्दी विभाग मे । विद्यार्थी काल से ही कविताए लिखनी प्रारम्भ की । प्रगतिवाद एव नये बोध के कवि । भागीरथ भार्गव के साथ 1961 म कविता' पत्रिका का का प्रकाशन । 1976 में मधुमती' के कुछ ग्रको का सम्पादन ।

प्रकाशित कृतिया— 1 'धूप भरी सुबह' 2 सूरज सब देखता है 3 जगल से गुजरते हुए (तीनो काव्य सग्रह) 4 ग्राधुनिक हिन्दी साहित्य क विकास की रूपरेखा (ग्रालोचना पुस्तक)

मराठी, गुजराती ग्रौर ग्रग्रेजी में कुछ कविताग्रो के ग्रनुवाद। कई वर्षो से राजस्थान साहित्य ग्रकादमी के सदस्य ।

सम्पर्क वरिष्ठ व्याख्याता, राजर्षि कॉलेज, ग्रलवर ।

हँसी

धरती
यह नीली-नीली चितकबरी धरती
मैंने धरती से पूछा।
तुम पहाडो का भारी बोझ
क्यो ढोती हो
निर्जीव, नुकीले, बदरग पत्थरो के ढेर से
तुम्हें क्या मिलता है ?

फेंक दो
मेरी प्यारी धरती इस बोझे को फेंक दो
और खुलकर हसो
इतने जोर से हसो
कि आसमान चौककर तुम्हारी ओर देखने लगे
और अपने खातो को
जल्दी-जल्दी समेटने लगे।

मैंने आसमान से पूछा
तुम्हारे इन मोटे खातो मे क्या लिखा है
कितने अको का हिसाब है तुम्हारा
कब पूरा होगा
पूरब और पश्चिम दोनो तरफ से
तूफान चले आ रहे हैं
वीयतनाम के जगलो से गुजरता हुआ
जहरीली गैसो का तूफान
जिसमे भुनते मास की गध मिली हुई है
सिनाई और गाजापट्टी से उठा हुआ

रेत के बगूलो का तूफान
जिसम जलते जहाजों का धुआ
और लैला खालिद की हँसी
एक साथ घुली हुई है।
मैने लैला खालिद से कहा
सिर्फ जेरुसलम म मत हँसो
मेरी प्यारी धरती को भी हँसाओ
मैंने वीयतनाम के जगलो मे कहा
थोडा जहरीला धुआ
मेरी हरी भरी धरती को भी पिलाओ

तब वीयतनाम के जगल
और लैला खालिद ने एक साथ कहा
हँसी कोई मुखौटा नही है
न कोई कौशल
हँसी भीतर मे फूटती हुई कविता है
जिसे लिखते समय
अगुलियो के पोर जलने लगते है
जिसे पढते समय
गले की नसे खिचने लगती है
अपने गले की नसे मजबूत करो
अपनी अगुलियो को सख्त बनाओ
और फिर जोर-जोर से हँसो
या चाहे कविता लिखो
यह तुम्हारी अपनी पसन्द का
मामला होगा।

•

रोशनी

अच्छा सिर्फ यह बताओ
कि ज़िन्दगी का सामना क्या है
या सिर्फ इतना कि
आदमी जिन्दा क्यो रहता है
क्या बनाता है वह त्रिभुज
चतुर्भुज या वर्ग ?
पहाडी शिखरो के ऊपर चढ वह देखता है
कोई दिव्य देवदारु वहा नही है
समुद्र के तल मे उतर पहचानता है
कौस्तुभ मणियो का अस्तित्व सिर्फ झूठ है
समानान्तर रेखाओ पर दौड वह सीखता है
उनका अंत कही नही होता है
कही भी नही,
हा अलादीन का चिराग
उसने पाया है
मगर चिराग के जिन्न की आँखे
इन दिनो कैसा डर जगाती हैं
और परेशानी यह कि चिराग
अब दूर फेंक सकता नही वह,
मुट्ठियो से चिपक गया है,
बावजूद इसके जिन्दगी है
रोशनी की एक लपट—जिजीविषा
उसे रफ्तार देती है
अच्छा सिर्फ यह बताओ
यह रोशनी की लपट कहाँ से आती है ?

आदमी के हाथ

कितनी पुरानी है पृथ्वी
कुछ नही कहती
कितने पुराने है पहाड
सब कुछ सहते हैं,
कितने पुराने हैं औरत के आसू
बार-बार बहते हैं,
कितनी पुरानी है भूख की आग
लगातार जलती है।

कितने पुराने है पहाडी झरने
चट्टानो के बीच रास्ता बनाते है,
कितने पुराने है भूकम्प
सब कुछ हिला डालते हैं,
कितने पुराने है ज्वालामुखी
बार-बार लावा उगलते है,
कितने पुराने हैं आदमी के हाथ
सब कुछ बदलते हैं ।।

●

एक मित्र से बातचीत

ठण्डी हवाओ के हल्के झोको के बीच
एक करकराहट की आवाज आती है और
तुम चौकन्ना हो जाते हो
आने वाले तूफान की आशका
ऊपरी खामोशी को चीर
तुम्हे बेचैन बना देती है
सुगन्धो के बीच
एक भिन्न गन्ध तुम सूँघते हो
बारूद की गंध
तुम्हारा डर शायद वाजिब हो
बे बुनियाद बिल्कुल नही है।

वे सिर्फ पीछे हट गये हैं
एक शक्तिशाली प्रहार के सामने
उनके तरकस मे
बहुत तरह के अस्त्र हैं
एक से एक मोहक, मारक, असरदार,
उनका उपयोग समय आने पर
वे जरूर करेंगे निर्ममता के साथ।

मगर सवाल फिलहाल
कल का नही आज का है
सवाल यह है कि हमे (मुझे और तुम्हे)
आज क्या करना है
सुगन्धो मे डूब निश्चित होना या

बारूद की गन्ध सूँघ बेचैन हुए रहना
लगभग एक जैसा है

हम क्या सूँघते हैं
दुर्घटना या तसल्ली भरा स्वाद
इससे ज्यादा वजनी है
वह ग्रासाश—जो जंगल के बीच
या दलदलों के किनारे सिर उठा रही है
उजली रोशनी और बेहतर जिन्दगी की
उसकी बाबत
हम क्या सोचते हैं ?

फैसले की कलम
कल किसके हाथ में होगी
कौन जरूरत पड़ने पर
खून को स्याही बनाने आगे बढ़ेगा
या कौन आगे बढ़ेगा
काले सैलाब के खिलाफ
उसकी इच्छा की गहराई
उसकी उदासीनता या उसकी तैयारी
फैसले के अक्षरों की बनावट
इन्हीं के बीच अपनी शक्ल लेगी।
तुम क्या सोचते हो ?

रणजीत

जन्म 1 मई, 1937, । जन्मस्थान-वयर, भीलवाडा (राज०) । शिक्षा एम० ए० पी०एच-डी० (हिन्दी) । प्रसिद्ध प्रगतिशील कवि एवं समीक्षक । बीकानेर, पाली उदयपुर और वनस्थली विद्यापीठ मे अध्यापन कार्य के बाद आजकल राजस्थान का यह 'मुख हस्ताक्षर' जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बादा मे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्यरत है। 1971 म 'सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार' से सम्मानित। 1973 मे अल्मअाता, सोवियत सघ मे सम्पन्न 'पाँचवे अफ्रीका एशियाई लेखक सम्मेलन' मे भारत का प्रतिनिधित्व।

प्रकाशित कृतिया—1 ये सपने ये प्रेत (कविता सग्रह) 2 गर्म लोहा ठडे हाथ (कहानी सग्रह) 3 इतिहास का दद (कविता सग्रह) 4 प्रतिश्रुत पीढी (सम्पादित कविता सग्रह) 5 जमती बर्फ खौलता खून (कविता सग्रह) 6 परिप्रेक्ष्य (समीक्षात्मक लेख) 7 हिन्दी के प्रगतिशील कवि (समीक्षा)

सम्पर्क अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय,
बादा (उत्तर प्रदेश)

उस समय

उस समय
मेरी होती है सिर्फ
एक शैया भर जमीन
एक कमरा भर आकाश
एक ट्यूब भर रोशनी
और एक आकुल द्रवीभूत देह
–रोमरोम मेरी, नितान्त मेरी, अपनी, निजी।
शेष सारी दुनिया न जाने कहां होती है
न जाने किसकी।

दूसरी बार समुद्री यात्रा करते हुए

अच्छा है कि अब मैं तुम्हें कुछ दूरी से देख सकता हूँ
अब मैं तुम्हें भी देख सकता हूँ और समुद्र को भी
नहीं तो पिछलीबार तो कहीं समुद्र था ही नहीं
लहराता हुआ हहराता हुआ
जैसे किसी दिवास्वप्न का एक बनता बिगड़ता हुआ चित्र था
नितान्त हवाई
और न था यह जहाज़
उसकी छाती चीरता हुआ बढ़ने वाला यह पोत
उस समय तो सिर्फ़ तुम थी
तुम्हीं समुद्र थी
तुम्हीं जहाज थी
और मैं उसमें यात्रा कर रहा था
नहीं, मैं भी कहाँ था ?
तुम्हारे ही अस्तित्व में कहीं घुला मिला सा
शायद हम दोनों ही नहीं थे
सिर्फ़ एकरस सा कोई घोल था
गाढ़ा, गहरा, घना
अपनी ज़मीन से पूरी तरह असम्पृक्त
पारे की तरह निरंतर दोलायमान
सघन, बोझिल लेकिन फिर भी कितना तरल !

पर आज तो यह समुद्र है
जीवित, जागृत, फुफकारता हुआ समुद्र
और इसकी भीषण पृष्ठभूमि में
डेक की रेलिंग पर हाथ रख कर खड़ी हुई तुम
मन्त्रमुग्ध सुन्दर लग रही हो।

टूटन

हुआ यह है कि
अपनी बीवी से मेरा सम्पर्क टूट गया है
जो कुछ था हमारे बीच बरसों से
न जाने वह कहाँ छूट गया है
ऊपर ऊपर से सब ज्यों का त्यों दिखता है
पर भीतर ही भीतर कुछ है जो पूरी तरह टूट फूट गया है
वह टूटा हुआ बजता रहता है हमारे संवादों के बीच।

वह यह तक भूल गयी है,
कि उड़द की दाल मुझे नीबू के बिना अच्छी नहीं लगती
और मैं उसकी दवा लेने बाजार जाता हूँ
और दोस्तों से गप्पें लड़ा कर
और बच्चों को आइसक्रीम खिलाकर लौट आता हूँ।
जन्म दिन तो हमने कभी मनाया नहीं, उसे छोड़िये
अपनी शादी की तारीख तक भूल जाता हूँ कई बार
और वह   नाम की स्पेलिंग तक गलत लिख रही थी एक दिन
वह जो एक बड़ा सच था हम दोनों के बीच
लगता है वह पूरी तरह झूठ गया है
हुआ यह है कि
अपनी ही पत्नी से मेरा सम्पर्क टूट गया है।

•

दो छोरों के बीच

मैं न तो किसी दैनिक के प्रथम पृष्ठ का
कोई आठ कॉलमी शीर्षक बनना चाहता हूँ
और न टेलीफोन डाइरेक्ट्री से पोंछ दिये गये
एक नाम की तरह चुपचाप 'शुद्धीकृत' हो जाना
इन दोनो स्थितियो के बीच
म कही जीना चाहता हूँ ।

मैं न तो किसी के प्रचार विभाग का पोस्टर बन कर
भीड मे बे नाम खोना चाहता हूँ
और न कोई महामानव बनकर उस पर इस तरह छा जाना
कि लोग मेरे उद्धरणो की किताबे अपनी जेबो मे रखें
और उनमे से देख कर चले अपना रास्ता ।

इन दो छोरो के बीच जो लम्बी चौडी जगह है
मै उसी के किसी कोने मे
एक इन्सान की तरह जिन्दा रहना चहता हूँ ।

डा० मदन डागा

जन्म-जोधपुर । शिक्षा—एम ए पी एच डी (हिन्दी) । वक्ता, लेखक पत्रकार और शिक्षक । सचिव, भारत सोवियत मैत्री सघ, जोधपुर । विद्यार्थी परिषद् के सक्रिय कार्यकर्ता—जेल जाने का भी अनुभव ।

प्रकाशित कृतियां—1 आसू का अनुवाद (कविता सग्रह) । 2 सीपी का सैलाब (मुक्तक सग्रह) । 3 अजानी सलीबो पर (सपादन) 4 साहित्यकार और साम्प्रदायिकता (सपादन) ।

सम्पर्क हिन्दी विभाग, सोमानी कॉलेज, जोधपुर ।

दो छोरों के बीच

मैं न तो किसी दैनिक के प्रथम पृष्ठ का
कोई आठ कॉलमी शीर्षक बनना चाहता हूँ
और न टेलीफोन डाइरेक्ट्री से पोंछ दिये गये
एक नाम की तरह चुपचाप 'शुद्धीकृत' हो जाना
इन दोनो स्थितियो के बीच
मे कही जीना चाहता हूँ।

मैं न तो किसी के प्रचार विभाग का पोस्टर बन कर
भीड मे बे नाम खोना चाहता हूँ
और न कोई महामानव बनकर उस पर इस तरह छा जाना
कि लोग मेरे उद्धरणो की किताबे अपनी जेबो मे रखें
और उनमे से देख कर चलें अपना रास्ता।

इन दो छोरो के बीच जो लम्बी चौडी जगह है
मै उसी के किसी कोने मे
एक इन्सान की तरह जिन्दा रहना चहता हूँ।

डा० मदन डागा

जन्म—जोधपुर। शिक्षा—एम ए पी एच डी (हिन्दी)। वक्ता, लेखक पत्रकार और शिक्षक। सचिव भारत सोवियत मैत्री संघ, जोधपुर। विद्यार्थी परिषद् के सक्रिय कार्यकर्ता—जेल जाने का भी अनुभव।

प्रकाशित कृतियां—1 आंसू का अनुवाद (कविता संग्रह)। 2 सीपी का मलाव (मुक्तक संग्रह)। 3 अजानी सलीबों पर (संपादन) 4 साहित्यकार और साम्प्रदायिकता (संपादन)।

सम्पर्क हिन्दी विभाग, सोमानी कॉलेज, जोधपुर।



गोया जिंदगी जिंदगी न हो ।

गाय मार जूता दान देना एक कहावत है
मगर आदमी मार बोनस दान देना
सरकार की आदत है ।
यह सरकार
जो रक्त सने चिथडे दिखा दिखा
सदय परिवर्तन करना चाहती है ना
वे उसके मासिक धर्म के चिथडे हैं
तुम नाहक उसे खून-खराबा समझ डर रहे हो
और प्रायश्चित मे आत्महत्या कर रहे हो ।

मैं तुम्हे हकीकत कैसे बतलाऊ
खून का रग खडिया से कैसे समझाऊ !
मौत से पहले मरने की आदत
वे हममें जानबूझ कर डाल रहे हैं
ताकि वे मौत के बाद भी जी सके ।

वरना तुम क्या समझते हो ।
क्या वाकई हम आदमी नही है ?
या दोष हमारी व्यवस्था में कही है ?

दो टागें होने से ही कोई आदमी होता
तो नसेनी भी दो टागो पर ही खडी होती है
और पूछ उसके भी नही होती ।

दोस्त मेरे ! तुम भेद को समझो
ट्रेजडी बहुत गहरी है ?
और यह उसी दिन हो गई

जिस दिन किसी वैयाकरण ने
बिना क्रिया देखे
हर पूंछ कटे जानवर को
आदमी होने की संज्ञा दे दी।
वरना ऐसा क्यों होता है
कि आदमी आदमी से डर जाता है
और रेंगते रेंगते
मौत से पहले मर जाता है ?
यह भी कोई जिंदगी है
कि आदमी थक जाये
महज सांस ले ले कर
और वह भी
खुले वातायन से नहीं,
कानून की कोठरी में किये गये सूराखों पे
नाक रगड़ रगड़ के
गोया जिंदगी जिंदगी न हो
सांसों का सिलसिला हो।
या इस धरती पर
हम जैसे ट्रेंसपासर हों
और हमारा जन्म
जानबूझ कर किया गया गुनाह।

पर यह भी बिनावजह नहीं है
कि तुम उसे आक्रोश कहते हो
मेरे लिये जो होश है।
किंतु अब मैं
प्राइमरी का बच्चा तो नहीं
कि जन्म और मौत के बीच की
खाली जगह भरने को ही जिंदगी समझ लूं,
जिंदगी अब मेरे लिये
पूर्ण विराम तक चलने वाला पूरा वाक्य है
सार्थक !
सप्रसंग !!
पर समझो

मेरे दोस्त ! इसे समझो
जन्म और मौत के बीच की खाली जगह
उनकी नीयत को नगा कर रही है,
पर वे अपने इस नगेपन को
सिर मे उतारी टोपी से ढाकना चाहते हैं
और जिंदगी की लम्बाई
विधान के बालिश्त से भागना चाहते हैं।

राष्ट्रीय व्यवस्था के ताले मे
गाधीवादी चाबी टूट जाने पर
वे समाजवादी 'मास्टर की' ले तो आये है
पर उसे जान बूझ कर घुमाया नही जा रहा है
और शोर किया जा रहा है
कि समाजवाद जा रहा है !
समाजवाद आ रहा है !!

ताकि समाजवाद का जाप करते करते
हमारी जिबडियो मे छाले पड जाय
और हम थक थक कर मर जाय ?

वरना तुम्ही सोचो
यह सब क्या हो गया
वह लाल लाल रोशनी
जो कल तक शरीफो की आखो को काटती थी
आज पीली मद रोशनी मे कैसे बदल गई है ?
चौराहो पर झिलमिलाती वे ट्यूब लाइटें
नाइट लेम्प कैसे बन गई है ?
राइफलो का बारूद प्रस्तावो मे कैसे भर गया है ?
फिर वही पुनरावृत्ति दोष
आदमी आदमी से कैसे डर गया है ?

ऐसी बात नही कि अखबारो में आग न हो
उनमे आग है।
तभी तो मेहरी उनसे चूल्हा जलाने का काम ले रही है
बाकायदा दफ्तर चल रहे हैं

ऑफिस आवस में—
उस क्लर्क की कुर्सी पर जो रुमाल टका है ना
वह इस बात का सबूत है
कि क्लर्क अभी कुर्सी पर ही है
मैटिनी शो मे नहीं ।
पूछ लीजिये पूछताछ वाली खिडकी पर जाकर
उत्तर देने वाला साहब के काम से कही गया होगा
अभी आता ही होगा ।
जैसे सुबह का भूला
शाम तक घर लौट आने पर भूला नही कहलाता
वैसे ही, ऑफिस खुलने पर चाय पीने गया बाबू
बद होने तक लौट आये
तो छुट्टी पर नही कहलाता है ।
और फिर, साहब और उसका भी तो
कोई ह्यूमनिटेरियन नाता है ?

अच्छा तुम्ही बताओ
कि मैं फाइलो मे उगाये गये गुलाबो से
अपने नासूर कब तक ढाकू ?
कब तक स्लम्स् के कीडो को,
नासापुटो में जाने से रोकू ?
और कब तक बगलो की फाटक पर लगी
कुत्तो से सावधान की तख्तिया देख चौकू ?
क्या वाकई हर बगले मे एक कुत्ता रहता है ?
यदि नही, तो मैं नाहक क्यो डर गया हूँ
फिर वही पुनरावृत्ति दोष
मौत से पहले क्यो मर गया हूँ ?
अच्छा ! आत्मा ही परमात्मा है
तो मैं भी स्लम्स की मोरी के कीटाणु नासापुटो में
दफ्तर की कुडी खटखटाने वाला एक परमात्मा हूँ
तुम मुझे पूजते क्यो नही ?

दोस्त मेरे !
तुम मुझे गुमराह मत करो ।

डिग्रियो की वैशाखियो का आदी होकर
मैं जसे चलना ही भूल गया हूँ
और अव जव जव मेरे पाव फासला नापना चाहते है
मेरे हाथ अनायास
इन वैसाखियो की ओर लपकते है
और मैं चाहकर भा
इस व्यवस्था के एक ठोकर नही लगा पाता
जिसने मुझे पाव पगु बना दिया है !



कुर्सी प्रधान देश

पहले लोग सठिया जाते थे
अब कुर्सिया जाते हैं
दोस्त मेरे !
भारत एक कृषि प्रधान नही
कुर्सी प्रधान देश है !

हमारे ससद भवन के द्वार म
कुछ स्प्रिगे ही ऐसी लगी है
कि समाजवादी सेठो की कार देखते ही
वह अपने आप खुल जाता है
और हम गरीबो को देख
चट बन्द हो जाता है
दोस्त मेरे ! तुम्हारा और मेरा ही नही
कार और द्वार का भी एक अतरआत्मी नाता है ।
उधर, पार्लियामेन्ट की नाक नीचे
तम्बुओ मे लगने वाले स्कूलो मे
जो बच्चे मिमिया रहे है
वे देश का भविष्य बना रहे हैं ।
नौजवानो को बूढा कर देने वाले
ये विश्वविद्यालय
जो कभी बुद्धिजीवी तैयार करते थे
अब, स्पजनुमा डिग्रीजीवी बना रहे हैं
जो बीज की तरह
न गल सकते हैं, न फल सकते हैं
मात्र, पानी उगल सकते है ।
वह, जो इन्होने सीखा था

जैसा का तैसा
दुनिया मे माईबाप इनका है पैसा।
तभी तो
अब द्रोणाचाय अगूठा नही
चैक कटाते हैं
खतरा होने पर ही केश मगाते है।

उधर दफ्तरो मे
कुछ हवा ही ऐसी चल रही रही है
कि बिना पेपरवेट रक्खे
कागज तो कागज
फाइलें तक उड जाती हैं
पर, ओफिशियल वेइग मशीनो मे
सिक्के डालते ही, फौरन निकल आती है।

श्याम घन को पाकर
गोपिया जितनी खुश होती थी
उससे ज्यादा तो आज
सफेद टोपिया खुश हो रही हैं।

दोस्त मेरे।
भक्तिकाल कभी खत्म नही होता
उसकी तो मात्र पुनरावृत्ति होती है।
प्रेम करने की, एक उम्र होती होगी
चापलूसी करने की
कोई उम्र नही होती हैं।

तभी देखो ना
अपने बेटे की नौकरी की खातिर
पुजारी एम पी क्वाटर मे, प्रसाद चढा रहे है
और मुल्ला जो मस्जिद मे नही
मिनिस्टर के बगले दुआ माग रहे हैं।
और हस जो कभी मोती चुगते थे
या भूखे मर जाते थे
चादीकी गोल गोल चवन्निया चुगने लगे हैं।

शायद चवन्नी सदस्यता
जीने का जरूरी साधन बन गई है
और उधर कुछ क्रांतिकारी
हँसिये पर से हथौड़ा हटा कर
चमचा रख रहे हैं
और हम सब
समाजवादी स्वाद चख रहे हैं।

दूधिया पृष्ठ

मैं इस बात के लिए सॉरी महसूस नही करता
कि जिंदगी के तग फुटपाथ पर
मेरी कुहनी तुमसे टकरा गई है।
और न मै पेन मागने के लिए
दात निपोर कर प्लीज कहता हूँ
शायद तुम इसे अशिष्टता कहो
शर्म से तो मैं वैसे ही गढा जा रहा हूँ
मगर इस बात के लिए नहीं कि मैं सॉरी या प्लीज नही कहता
वरन् इस बात के लिए
कि मैं तुम्हे रोटी दिलाने खातिर कानून नही तोड सका
यह ठीक है कि
'ब्लो हॉट, ब्लो कोल्ड'
देखने के बाद राष्ट्रीय धुन पर चढ खडे होकर
वे जिस राष्ट्रभक्ति का परिचय दे सकते हैं
वह मैं नही दे सकता।
मेरी कमर में वैसी राष्ट्रभक्ति की स्प्रिगें कहा लगी हैं?

फिर तुम्ही बताओ
कि मैं राष्ट्र प्रेम के गीत कब तक गाऊँ?
कब तक गा-गा कर घावो को सहलाऊँ?
कब तक दिल मे इश्क को जगह दूँ?
और खुद स्लम्स की मोरी पर शरणार्थी बन पडा रहूँ?
नही, नही! तुम मुझे गुमराह मत करो
आहो में मीठे गीत मचलते होगे
पर मेरे बच्चे भी तो दूध के लिए मचलते हैं
उनकी भूखी आतो को कब तक चदामामा की लोरिया सुनाऊँ

जो अर्से तक सुना चुका हूँ
हलरा-दुलरा कर भूखे सुला चुका हूँ ?
लोरियो की अप्सराएँ दूध के कटोरे लिये
तुम्हारे बगलो मे आई होगी
तुम्हारे बच्चो और तुम्हारे कुत्तो के लिए
मेरे बच्चो को तो उस दूध की खुशबू भी नही आई
वियोगी होगा पहला कवि
पर मैं पहला कवि नही हूँ
मै आखिरी रोगी कवि हूँ
और करना चाहता हूँ
बिना स्टरलाइज किये, इन्फेक्शियस शब्दो का प्रयोग
ताकि इनकी छूत कुछ तुम्हे भी लग सके,
बार-बार हर करवट पर चीखना चाहता हूँ
कि तुम्हे भी कुछ तकलीफ हो
और तुम्हारी नीद ही नही
नीद की झपकी तक उड जाए
पर काव्य के इतिहास मे (एक) दूधिया पृष्ठ जुड जाए।

किस्मत की रेख

नजूमी !
तू किसी अमीर का हाथ देख
घिसती नही निठल्ले हाथो की रेख !
मेरे हाथो ने तो
गेंती की पीठ को सहलाया है,
मैंने मेम साहिबा को नही
तगारी को सिर उठाया है—
घिस गयी है
इससे मेरी किस्मत की रेख !
नजूमी !
तू किसी अमीर का हाथ देख ! !



कमर मेवाडी

जन्म 1939 कहानीकार एव कवि। 1966 से 1974 तक नवलेखन की चर्चित पत्रिका 'सम्बोधन' (त्रैमासिक) का सम्पादन। प्रगतिशील लेखन से सम्पृक्त। राजस्थान साहित्य अकादमी की सरस्वती सभा के सदस्य।

प्रकाशित कृतिया—1 याद के दाग (कविता सग्रह)। 2 'ग्राखिर तक' (एक लम्बी कविता) 3 लाशो का जगल (कहानी सग्रह) 4 वह एक (उपन्यास)

सम्पक सम्पादक सम्बोधन,
काकरोली (राज०)

जनता के कवि के नाम

डनलप के पलग पर सोने वाले दोस्त
जनता के लिये कविताएँ लिखना बन्द करो !
क्या तुमने कभी देखी है खेत की मेंढ
सूंघी है धरती की मादक गन्ध
कभी देखे हैं धूप मे झुलसते शरीर
जागरण से जलती आखे ?
फिर फिजूल है इस तरह लोगो को गुमराह करना
यह कहावत तो सुनी है
कि खरबूजे को देख कर खरबूजा रग पलटता है
पर तुम्हारी तरह नही
तुम तो प्यारे दिन रात गिरगिट की तरह
बदलते हो अपना चोला
उडाते हो मक्खन मलाई
काफी की चुस्कियो के साथ
पक्षधर बनते हो आम आदमी के
और वही आम आदमी
किसी दिन बस की यात्रा करते समय
तुम्हारे पास की खाली सीट पर आकर बैठ जाए
तब तुम चढा लेते हो घृणा से अपना थोबडा
रूमाल से ढंक लेते हो नाक।
इसलिये तो कहता हूँ मेरे दोस्त !
जनता के लिये कविताए लिखना बन्द करो
क्योकि तुम जैसे अनेक लोग
आज बन गये हैं जनता के हमदर्द
जो अनुकूल अवसर आते ही बदल लेगे अपना रूप
उन सबको अब पहचान लिया गया है

नकली कामरेड के प्रति

उतार फेंका अपने चेहरे से नकली मुखोटा
अब और मुलम्मे बाजी नही चलेगी
क्योंकि—
तुम्हारे चेहरे का रग फीका पड चुका है
और झूठी पड गयी है तुम्हारी सारी हिकायत
बुरा न मानना मेरे दोस्त
वक्त बडा सगीन आ गया है
अब सहानुभूति के शब्द
खोखले लगने लगे है
और तेजाबी कविताओ का अर्थ
नपुसकता का बोध कराता है
भूगोल का अर्थ कुछ और भी होता है
जो शायद तुम नही जानते
पर एक बात याद रखना
अब कोई नया गुर तुम्हारी ढाल नही बनेगा
चाहे तुम पूरे बगीचे मे
सस्कृति के गुलाब की कलम लगा दो
या इन्साफ की अदालत मे
किसी बेकसूर का
फासी के तख्ते पर चढा दो
कामरेड/सावधान
अब तुम्हारी चालाकियो के चक्कर मे
कोई नही आयगा।

आजकल

मैं सुन रहा हूँ
चन्द जलमाद लोगो के आने की आहट
जो कविता को ढूढने फिर रहे है
इधर उधर
वे इतने खौफनाक हैं
कि उनकी आखो को ओर देखने से
दहकते हुए अगारे का अहसास होता है
और एक दहशत वातावरण मे घुल जाती है
खाकी वर्दी मे लिपटे हुए वे लोग
काख में तेल पिलाया डण्डा दबाये
मुझे मिश्र की ममी से अलग कुछ नही लगते
पर वे इतने काइया हो चुके है
कि कविता का अर्थ समझने का दावा करते हैं
और
कविता को एक खतरनाक मुजरिम से अधिक
अहमियत देते हैं
क्योंकि
आजकल कविता
उन्हे एक नगा हथियार लगने लगी है
मुझे खुशी है
कि देश की प्रत्येक धुनी दीवार पर
कविता की एक शानदार फसल
उग आयी है
अब देखना है
वे लोग कविता के साथ
क्या सुलूक करते हैं

•

प्रतीक्षा

सारी की सारी खुशियां
बन्द है
कुछ बडी बडी इमारतो मे—

और
शहर के फुटपाथो पर
रजो गम की
मातमी बरसात हो रही है।

कई लोग
ईसा मसीह की तरह
अपने कन्धो पर सलीब रखे
गली गली घूम रहे हैं—

और मै
उस दिन की प्रतीक्षा मे हूँ
जब
इन बडी बडी इमारतो मे बन्द
खुशियो की लाशो को
शहर के प्रत्येक चौराहे पर
टाँग दिया जायगा।



डा० सावित्री डागा

जन्म । 12 मार्च, 1937 । शिक्षा– ए एम (हिन्दी) पी एच डी । गत वर्ष राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत । पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित तथा आकाशवाणी से प्रसारित ।

प्रकाशित कृतिया— 1 अमिट निशानी 2 मुक्तावली 3 आधुनिक हिन्दी मुक्तक काव्य म नारी 4 सन्दर्भों से कटे हुए (राजस्थान साहित्य अकादमी से पुरस्कृत) 5 एक प्यास जिन्दगी ।

सम्पर्क—हिन्दी विभाग जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर ।

रिश्ते, रास्ते, कुर्सी के हत्थों में

रिश्ते नही, रिश्तों के मुखोटो का घेरा
यादे नहीं, यादो के प्रेतो का डेरा
और जिन्दा जागता यह स्नेह का नन्हा मा शिशु
दफना दिया जाता है
हर रोज किसी सडक-चौराहे पर
जिसमे, इस बिकी हुई, बाजारु जिन्दगी का रास्ता साफ हो सके।

गलती से शेष बचे आदमी के अतस से
कभी-कभी फिर फूट पडते है, स्नेह के अकुर
करुणा के किसलय, क्षमा, दया और ममता की
कुछ नन्ही कलिया
तब लगता है, इन्ही समझौतेवादी, सुविधाभोगी कौवो को
शायद कोई बम फटने वाला है
और फूल बनने से पहले ही, बेरहमी से तोड कर कुचलकर
फेंक दिया जाता है मिट्टी म,
हर नवजात सपने के सूरज को
लावारिस बादलो के हवाले कर दिया जाता है।
किसी को फूटी आखो नही सुहाता
सरलता का भावना (उसके जिन्दा रहने का अहसास)
बेहद दद देती है यह बात
कि अमानवता की काल कोठरी मे कैद होने पर भी
आदमी अभी तक, कही किसी कोने मे जिन्दा है।

उससे भी बडा आश्चर्य बन जाती है यह बात
कि पूजीवादी विष के अनक प्याले पिला देने के बाद भी
ईमान की आवाज उसकी किसी किसी धडकन मे कभी कभी

क्यो सुन पडती है !
सब ओर दिन को ही नही, रात को भी
मडराते रहते है बदरूप बदनीयत
कौओ और गीद्धो के हुजूम
मरे हुए आदमी का मास नोचने के लिए
लाशो के ढेर पर जश्न मनाने के लिए
ऐसे मे कितना बडा अपराध बन जाती है
यह छोटी सी भूल
आदमी को ईमान सहित कही छिपा कर जिन्दा रखने की बात
हवाएँ हँसती है ऐसी नादानी पर
कहती है, यह बचकाना हरकत है, नासमझी है !
सीधे, सही रास्ते, जैसे अब खत्म हो चुके हैं !
और सभी वे बदल गए हैं, दोराहो चौराहो मे
मजिल कही से भी नही दिखती
जहा से भटकाव का सिलसिला शुरु होता है
लगता है, अब केवल रास्ते ही रास्ते हैं
पर, यह नही मालूम
कि आदमी उनके लिए है
या वे आदमी के वास्ते है ।
कोई भी हमशक्ल अब रास्ता दिखाने नही आता
शायद सभी को कैद कर दिया गया है
बेशर्म जरूरतो या बेहया खुदगर्जी की कुर्सी के हत्थो मे !

जिन्दगी जहा कैद है

विना दीवारो ओ' दरवाजो की एक खुली जेल
जन्म से मात तक
न कभी खुलती है न कभी बन्द होती है
पर रहती जरुर है, टूटती कभी नहीं
फिर भी जिन्दगी है कि सिसकती तो है,
पर छूटती कभी नही !

नदी की धारा से लेकर सागर की विराटता से-
उठती हुई लहरो की विशाल बाहे
हमको बुलाती हैं
पर, एक छोटा सा पोखरा निकलने नही देता
उगी हरी काई भरे कीचड वाले पोखरे म
कभी कभी खिलने वाले खुशियो के चन्द कमल
चादनी बरसने पर मुस्काने वाली कुमुदिनी सी नन्ही नन्ही तमन्नाएँ

पूर्णिमा को झाक जाता सुहाने सपने सा चाद का प्रतिबिम्ब,
बाध बाध लेता है,
जब जब भी निकलने की कोशिश की जाती है
पाव रपट जाते हैं, कीचड मे बार बार !
नही हो पाता गरजती उत्ताल तरगो- से खतरो का सामना
और न उपलब्धियो के खरे मोती मिल पाते हैं !

धरती से मीलो तक खुला हुआ नीलाम्बर
विविध रग-रूप धार आमन्त्रित करता है
(मुझको भी देखो तुम, मुझ जैसे व्यापो तुम)
पर, 2×4 वाली लोहे की तिजोरी मे

जिसमे भरा रहता है घुप अधकार
आदमी ठुस जाता है, नोटो के साथ-साथ,
सोने के साथ–साथ आदमी भी धातु या ढेला बन जाता है
बीस से साठ, यानी चालीस वर्ष
उसी को भरने मे रीते हो जाते हैं
कभी जो जिंदा थे, बीते हो जाते हैं !

एक भूख, प्यार और पैसे की भूख से भी और बडी होती है
पेट की थैली की
उसी को भरने म उम्र रीत जाती है
कभी 'कुछ करने की, कभी 'कुछ' बनने की
चिनगारी जगी भी हो
बेशम जरूरतो की राख तले दबकर स्वय बुझ जाती है
रोटी व कपडे की कीमत चुकाने म
हीरे–सी कीमती कोई चीज खुद ही चुक जाती है !

ये ठेले, ये तागे, मानव से खीचे जाने वाले ये रिक्शे
अधरात तक फटी–फटी पलको–सी पथ–जोती
चाय की, पान की, ये छोटी दूकान
पटरियो पर बिछी हुई मनुज की बिसात–सी
फुटपाथी दूकान
सदा--सदा सजती है, सदा बिखर जाती है
दस–बीस सिक्को व दो–चार नोटो मे कैसे कैद हो जाते
मानव के सतरगी सपनो के ये विशाल इन्द्र धनुष ?

दशन तो कहता है कि 'आत्मा परमात्मा है
हम सब स्वाधीन है, कम अपना करने को
पास के मैदान से भाषण देते नेताजी
माइक पर चीखते पूरे विश्वास से
अब हम स्वतन्त्र हैं कट चुकी अपनी गुलामी की बेडिया !'

रात के बारह बजे पास से गुजरता हुआ एक बुढा
ठेला घसीटते हुए एक सडे फलो का
लालटेन की रोशनी में फैलाकर कुछ पैसे हथेली पर गिनता है
सिर ठोक लेता है,
कौन जाने कल की सुबह क्या होगी !

इसी से अंधेरा है

फ्यूज हुए बल्ब-सी
यह जिन्दगी
ऊपर से सुन्दर है, साबत है
भीतर से टूट गया
तार कुछ ऐसा इक
रोशनी नही होती
इसी से अंधेरा है।

•

अहम्

अहम्
पिंजरे मे बन्द
शेर-सा गरजता है
तोड कर
सींकचे मजबूरियो के
बाहर आने को
बार-बार तड़पता है।

भागीरथ भागव

जन्म 1937। शिक्षा--एम ए साहित्यरत्न। मुख्यत कवि। कहानियाँ भी लिखी है। 'समीक्षा' (आलोचनात्मक द्वैमासिक) का तथा 'कविता' (वार्षिकी) का सम्पादन। एक अनियतकालीन पत्रिका 'शब्द' के कुछ अक प्रकाशित।

प्रकाशित कृति—हथेलियो म ब्रह्माड (कविता सग्रह) 1970 मे प्रकाशित।

पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित। राजस्थान साहित्य अकादमी के सदस्य। मुख्य काय क्षेत्र अलवर रहा है। अभी केन्द्रीय विद्यालय, दुर्गापुर मे अध्यापन।

सम्पक केन्द्रीय विद्यालय, दुर्गापुर।
(प० बगाल)

शाही सवारी

सावधान !
करबद्ध हो एकतरफ हो जाइए
यह ऊपर छायी काली मटमैली घटाओं को देख
यूं चेहरे को मत लटकाइए।
तूफान तो आते ही रहते हैं
कभी-कभी नियम और अनुशासन की भी
बात हुआ करती है।

तो जनाब सुनिए,
शाही बग्गी में शाही सवारी आती है।

अहा !
कितनी मनोहर और आकर्षक है
यह शाही बग्गी !

कितनी मोहक चाल है
इन अरबी घोड़ों की
इनकी हिनहिनाहट में कितना नाद सौन्दर्य
इनकी त्वचा में है चिकनाहट
रगों में हैं स्फूर्ति
भारी भरकम आकार में हैं—
कई इन्द्रधनुष।

इनकी ठक ठक की ठनठनाहट से
लोगों की बढ़ जाती हैं धड़कनें।

देखो, यह बालों का झब्बा
फुदकती जाती हैं सोन चिरियाएँ।

सूरज की आभा को कम करता
यह लगा है—समता का तुर्रा

बग्गी की भी है अपनी शान
चकाचौंध उत्पन्न करती गुजरती है
एक चमचमाहट, एक सरसराहट ।

शाही सवारी की मोहक है मुस्कान
जहाँ पड़ती है दिव्य दृष्टि
कहते हैं वहीं
समस्याओं के जंगलों में उग आते हैं फूल ।

आप भी जहां है तहां
खड़े रहें मौन
क्योंकि मौन की भी अपनी होती है भाषा
सुना है—इस भाषा को पढ़ना सीखा है—
जादुई भाषा और नारों की सवारी ने ।

आप तो यूं ही होने लगे हैं उदास
वक्त होता ही गुजरने के लिए है
पच्चीस साल का वक्त कोई वक्त नहीं होता
अनेक बार गुजर जाती हैं सदियां ।
बुद्ध, महावीर, गांधी का है यह देश
बड़े लोगों ने दिया हमें—सब्र का उपदेश ।

आप तो यूं ही होने लगे हैं बेचैन
पेट को थोड़ा दबाइये, आंखों
को पथराकर कहीं बनाइए स्थिर ।

देखिए, मैं फिर किए देता हूँ सावधान
आपके मुरझाये चेहरे, सिकुड़े शरीर और
सूखे कंठ से नहीं निकलनी चाहिए कोई चीख ।

शाही सवारी की तन्द्रा और यह आकर्षक मुद्रा है भव्य,
और किसी अद्भुत लोक की कल्पना में है लीन
सुनिए, यह भंगिमा न होने दीजिए भंग ।

शाही सवारी को आराम से
शान से जाने दीजिए गुज़र
कृपया रहिए शान्त—यात्रा है बहुत जरूरी ।

एक अंधी गुफा से दूसरी लम्बी अंधी गुफा की ओर
वहमों के जंगल में होती हुई—यह अद्भुत यात्रा—
यह शाही सवारी—चली जा रही है—
इसे तलाश है किसी नये तिलिस्म की ।



कुछ दूरी है

कुछ दूरी है
जो बार बार मन को छूती है
तुम तो चल आये थे अपने
खण्डित सपनो को लादे
बैसाखी के सहारे मेरे पास ।

तुमने सोचा था—
मै अपने अधूरे ताने बाने को
छोड तुम्हारे सपनो की डोर
जोडने लगूगा और स्वय
बन जाऊँगा तुम्हारी बैसाखिया

सच, तुम्हारी कहानी मे
चाहा था बहुत डूबना
जितना चाहा था डूबना
कि बार बार ऊपर धरातल पर
रंगने लगता था ।

कोने मे रखी है तुम्हारी बैसाखिया
उनकी नाप तौल मे लगातार रहा लीन
उनके पास जाकर देखता कि
कभी उनसे बडा हूँ और कभी छोटा ।

बार बार तुम्हारी आखे मुझ पर गड जाती
और ढूँढती रहती—
वह प्रक्रिया
वह कोई उपक्रम
जिनसे मुझे तुम्हारी बैसाखिया बनना था ।
तुम निराश हो ।
काश ! मैं बन पाता तुम्हारी बैसाखी ।

किस हद तक

मत आइए बाहर
इसके लिए वस्तुत आपको
बाध्य नही किया जासकता है
सबको स्वतन्त्रता है, अधिकार है
अपने-अपने ससार म जी सकने का।

ठीक है–वही है आपका अपना ससार
अपने कमरे मे और कमरे से सटे कॉरिडोर मे
करते रहिए एक के बाद एक चक्कर
उडाते रहिए सिगरेट के कश
देखते रहिए धुँए से बने छल्लो के
बनने व मिटने के क्रम को।

मत आइए बाहर
बने रहिए वही अपने रचना ससार मे
आक्रोश मे दबाइए पुश बटन
या फिर फोन के डायल को घुमा
बीबी को दीजिए व्यक्तिगत निर्देश
और फिर अपने को
फाइल मे डुबोते हुए
चपरासी को चाय का दीजिए आदेश।
चाय की सिप के साथ
ड्राअर से नई विदेशी पत्रिका निकाल
उलटते रहिए उसके पृष्ठ
आगन्तुक से भेंट करते समय
बन जाइए और भी गरिष्ठ।

आपके दोनो ओर ऊँचे-ऊँचे लगे
फाइलो के ढेर और ऊँचे हो जायगे
आप नही चाहगे खोलना उनके फीते
आप चाहेगे वे फाइले ही ऊपर होगी
और दूसरी चली जायेगी और नीचे

आप मत आइए बाहर
किन्तु हुजूरआला, बस एकबार, केवल एकबार
खिडकी के पल्ले खोलिए और बाहर झाकिए-
आप उधर देखिए-
आम आदमी का तमतमाया चेहरा
और उस मासूम बच्चे की निर्दोष मुस्कान
क्या आप इन दोनो मे कोई सम्बन्ध ढूँढ पायेंगे ?

आप नही आना चाहते है बाहर
बस इतना बताइए
कब तक उलझाते रहेंगे पहलियाँ
आखिर कब तक ?
और किस हद तक ?

एक और शुरूआत

एक ओर सर्वोदयी पद-यात्रा की शुरूआत
एक ओर शुरूआत संसद से सडक तक ।

एक ओर भव्य जुलूस-जग शान के साथ
एक ओर हटिए-गुजर जाने दें ।
जुलूस होते ही है गुजर जाने के लिए
एक ओर सही-कार्निवाल ।

पूरे अमले के साथ निकला है जुलूस
जा जगन कहदे मगू तेली से
और उसकी घरवाली से
संसद से निकला यह जुलूस
जाने किस घर म डालदे पडाव
जा रे जा
बुझे पडे अलाव मे मार दे फूँक ।

टूटना बिखरना
जुलूस की है नियति ।

इस टूटन-बिखरन से पूर्व
तू जा जगन और
ढूँढले अपनी कोई ठाव ।
वहाँ से यह देखना-अद्भुत होगा ।
तोरण-स्वागत द्वारों के बीच से
पथ पर बिछे-
फूलों पर गुजर जाना
एक सर्वोदयी यात्रा का ?

मणि मधुकर

जन्म 1942। शिक्षा—हिन्दी म एम ए। प्रख्यात कवि कहानीकार, उपन्यासकार एव नाटककार यानी सम्पूर्ण लेखक। राजस्थान सगीत नाटक एव राजस्थान साहित्य अकादमियो स सम्बन्धित। प्राध्यापक, सम्पादक, य को नौकरी लेकिन कभी बाध कर नही रखे जा सके। 'कल्पना' के सम्पादक मडल म रहे। फिर स्वतन्त्र रूप से जयपुर म 'अकथ' पत्रिका निकाली। व्यक्तित्व के धनी और जीवन म आगे और आगे बढ़ने की दृढता। राजस्थान ग्रन्थ अकादमी की ठीक सी नौकरी छोडने के बाद आजकल कलकत्ता म है पहले बिरला नाट्य सस्थान से सम्बन्धित थे और फिलहाल अमृत बाजार पत्रिका स।

प्रकाशित कृतियां — 1 सुधि सपनो के तीर (कविता) 2 खण्ड-खण्ड पाखड पर्व (लम्बी कविता 3 सफेद मेमने (उपन्यास) 4 हवा मे अकेले (कहानी सग्रह) 5 भरत मुनि के बाद (कहानी सग्रह)

नाटक तथा एकाकी भी लिखे हैं और मच पर अनेक सफल प्रयोग किये हैं।

सम्पर्क फ्लेट—48, 209, आचार्य जगदीश चन्द्र बसु रोड, कलकत्ता।

ताई प्रभुताई

1

मेड पर चढ़ने ही नजर आता है पेड
और पेड पर पहुचते-पहुचते
डाल से गिर पडती है
कल शाम को बनाये गये घोसले के
मरने की मुनादी
गिलहरी चुपचाप कुतरती रहती है
गूदा और गर्व

हँसने लगता है समूचा हरापन
किसी घुग्घू
किसी घु घरू को खुश करने के लिए
और मेरे हाथो की
मुडी हुउ अँगुलियो मे एक छोटी-सी चिनगी
चटक कर रह जाती है सिफ !

2

काचर वोर वाजरे के सिट्टे-पुल-गस्ते
अँगरखे-माफे ओढने कुरते-कारखाने समन्दर पहाड
सब के सब सिर झुकाये ताल दे रहे हैं
ताई प्रभुताई की बतकार पर और
मैं देखता हूँ कि एक शीशी म
धीरे धीरे रेंग कर
आगे बढ रहा हैं सखिया—
एक सुन्दर, आकर्षक कीडे की तरह !
यह क्या घुँघुँआ रहा है
जगल मे जीवन जैसा !

3

उधर—कौन हिला रहा है
अपने इजारबन्द की फुन्दनी ? बौने की बत्तीसी
में टपकती हुई सयानी हँसी ?

कौन फैला रहा है इत्ती सारी काली पीली नीली
आसमानी पगडंडियाँ—
टूटी चौखट वाले दरवज्जों के सामने ?

अभी अभी तो दातौन रगड़ रहा था हज़ारीलाल
लुंगी कस रहा था अलीमुद्दीन
कचरा उठा रहा था गोपला
टाट के परदे को रोशनी के लिए खिसका रही थी फुलिया

और अभी अभी बेसुरी हो गयी है पूरी नदी
काठ मार गया है बोलते हुए पानी को

4

हर कोई हर चीज को तलाश रहा है
हर चीज अचानक गायब हो गयी है
चूल्हे और हाट के बीच

किसी को पता नहीं कितनी कवियों की जरूरत है
ताई प्रभुताई के केश सुलझाने के लिए
कितने देहधारी शब्दों को बुलाया गया है
दीवारों में चुने जाने के लिए
ठंडा पसीना ठंडी ऋतु के स्वागत में खड़ा है, बेआवाज !

5

तो भाई, वहीं जहाँ दूसरे लोग पुनर्जन्म की
प्रतीक्षा में खड़े हैं और गा रहे हैं
प्रभुगान—मुँह में तिनका डाले हुए
एक उजड़े हुए दरख्त को देखो, जो अब एक
तना भर है यानी ठूंठ है—लेकिन
उसकी जड़ें अपनी जमीन के रस में डूबी हुई हैं
पुख्ता हैं—
कोई असर नहीं है उन पर आँधी के प्रसंगों का !

सामना

माँ की अँगुली थामे हुए
भाई के साथ साथ
पिता के बिल्कुल पिछे
चल रहा था वह

अकेला और अनमना

एक छोटी सी उम्र
और इतनी कडी धूप मे सामना

हवा गुम
पेड गायब
रास्ता लम्बा
उसी की तरह चारो ओर मे
कटा हुआ

शायद कही कोई पँखेरू
सन्नाटे के
सख्त दबाव के बावजूद
चोंच खोले और उसे
अकेला न रहने दे।

मेरे भीतर जो थक गया है
वह मुझसे लड रहा है
और मै उसके आगे हाथ जोडता हूँ
भाई, मुझे माफ करो

मुझमे ताकत नही
मुझमे शब्द नही
मुझमे आवाज नही

लेकिन—वह जिद्दी
कहाँ मानता है मेरी बात
वह जो थकान से चूर चूर है खुद
मुझसे दिन-रात लड रहा है ।



हँसते हुए

अपने घर से अपनी कब्र तक का
सारा रास्ता
आहिस्ता आहिस्ता
पार कर गया वह, एकदम चुपचाप।

फिर अचानक
यह महसूस कर कि जुबान कितनी ग़ैरजरूरी
यानी फिजूल हो गई है, वह
ठहा कर हँसने लगा
और हँसता रहा
बेखयाली में।

हसने लगी उसके साथ-साथ
वे झाड़ियां
जिनके भीतर एक डरा हुआ खरगोश
छुप कर बैठा था।

खिलखिलाने और खनखनाने लगी
वे बेड़ियां
जिनके मजबूत पहरे में
उसके हाथ-पांव सुरक्षित थे।

आपस में उलझने और मसखरी करने लगी
वे सलवटें
जिन्हें पहन कर
उसका चेहरा
वक्त के दरिया में गोता लगा जाता था।

हां मैं भी शामिल था
उस खुशनुमा मौसम की चहलपहल मे
दाह और डाह से परे !

कितनी उदास
कितनी अकेली थी वह हँसी
जो धीरे-धीरे
हवा की बैसाखियो के सहारे
समूचे दृश्य पर हवा हो गयी !

डा सुधा गुप्ता

हिन्दी व अर्थशास्त्र मे एम ए। पी-एच डी, हिन्दी मे। 1964 से लिखना प्रारम्भ।

प्रकाशित कृतियाँ— 1 मनचीन्हा प्रवेश (कविता संग्रह) 2 रोशनी की शहतीर (कविता संग्रह) 3 चेतना के फूल (कविता संग्रह) 4 छायावादोत्तर काव्य मे शब्दार्थ का स्वरूप (शोध प्रबन्ध)।

सम्पर्क हिन्दी विभाग, राजकीय मीरा महाविद्यालय, उदयपुर।

समझदारी का भय

यह सच है कि हर खुशबू की पहचान
अलग अलग होती है
अतीत जब वर्तमान पर आकर टिक जाता है
तो वर्तमान दोहरा भार सहन नहीं कर पाता
और लड़खड़ाने लगता है।

वह आकाश का टुकड़ा
तुम्हारे बहुत करीब था
बादलों ने अचानक ढँक लिया
अब सूरज का प्रकाश
उस पर नहीं पड़ेगा
दबा दबा घुटता हुआ
सिसकी भर कर रह जायेगा
तुम्हारे कांधे का बोझ
निरन्तर बढ़ता रहेगा।

उन हरावलों को कह दो
जिन्होंने तुम्हारे निकट आकर
तुम्हारे हरेपन को चुराने की कोशिश की थी
तुम उनके हाथों को झुलसा दोगे
तुम्हारी ताकत को वे
चुनौती नहीं दे सकते
तुमने तो केवल अपने जीवन की
स्वीकृति चाही थी
और चाही थी शान्ति,

नष्ट होती फसलों को बचाना चाहा था
और चाहा था लौटाना बीता हुआ वसन्त
सचमुच ही तुम्हारा स्वप्न
बेहद खूबसूरत था

जिसे तुम अपने भूखे बच्चों को
जब-तब सुनाकर उनींदा कर देते
और उनकी भूख को
स्वप्न का नशा देकर
सुला देते
वे मासूम बच्चे
जिन्हे स्वप्न और यथार्थ की
दूरी नही पता थी

धीरे धीरे समझदार होते जा रहे हैं
और उनकी समझदारी का भय
तुम्हारे जिस्म मे
समाता जा रहा है।

ऋतुओ की भाष

बेशक एक वर्ष गुजरने के बाद
हम छोटे हो जाते हैं
लेकिन उस एक वर्ष मे
कितने दु ख, दर्द, सुख श्रौर श्रनुभव
जी लेते हैं
कितने श्रमानुपिक कर्म करते हुए
स्वय बूढे हो जाते है
लेकिन हमारे कतत्व
कभी बूढे नही होते ।

हमें इन्तजार है
उस बवर सगीत का
जो सष्टि के श्रादि से
श्रादिम जनो के श्रट्टहास मे
गू जा था
वे सनातन लहरे
जिसने श्रपनी मौत
कभी जानी नही
सागर के विस्तार मे बँधी
नियति श्राप सह रही है
मूक खामोश
शताद्वियो की विह्वलता श्रपने मे सँजोये ।
उन श्रट्टालिकाश्रो श्रौर प्राचीरो के
भग्नावेशो मे
कितनी सभ्यताएँ मृत पडी हैं

कितनी शृंगारिक स्मृतियां
युग्म क्रिडाएँ सिसक रही हैं

मत दो मुझे,
उन हुतात्माओं का पता
जिनके पास पुण्यों की
एक लम्बी फहरिश्त है
उपदेशों के भारी भरकम शब्द हैं,
मैंने तो सिर्फ
उन बदहवास चीखते लोगों को
कांपती टांगों से
घिसटते हुए देखा है
जिन्हें मुक्ति पानी है
अपने आस-पास की गर्म हवा से।

गुमटी सी उठी हुई याद सा
एक नुकीला क्षण
बींध जाता है
खिसकते हुए वक्त के सीने में
कि कतार दर कतार
चली आती है
अनाहूत प्रश्नों को लिए
झुकी कमर के साथ
अनाम परछाइयां
एक सिलसिला है
खत्म होने का नाम नहीं लेता
रात रात भर।

कब तक तुम चुपचाप
इसी तरह देखते रहोगे
यह शर्मनाक खेल
कि सिर्फ पानी ही
रंग नहीं बदलता
खून भी रंग बदल लेता है
अपना ही खून।

श्रम की इकाइयाँ
एक के बाद एक
छलते हुए उन निर्दोष क्षणो को
जहा कभी मैंने अपनी सम्पूर्ण आस्था को
अन्तहीन ऊँचाई तक पहूँचा दिया था
किन्तु आज इन अछूते क्षणो मे
कितनी अकेली पड गयी हूँ
एक इन्द्रजाल के मोह मे
कितना छली गयी हूँ।
क्या तुम सोच पाओगे
वह उद्भुत होता हुआ आलोक
जिसे देखकर रोमांचित हो जाती थी
मैने तो केवल जाना है
किस तरह सृजन
गलत हाथो म पडकर
रास्ता भटक जाता है

सहसा जब आतंकित व्यूह को तोडकर
मेरे ठीक सामने खडे हो जाते हो
अभेद्य दीवार बनकर
तब मैं चाहती
इतने जोर से चीखूँ
कि तुम्हारा स्व तक हिल जाये
तुम्हारा बुद्धत्व कही से भी
बिखर जाये
मुँदी हुइ आखो मे
आतुर व्याकुलता का एहसास हो
अभय मुद्रा मे
उठे हाथो मे
दुनिया की सारी ताकत समा जाये

सच कहती हूँ
मेरा सशय कही से भी

मद्धिम नही पडता
कि थकी हुई आखो मे
प्रश्नो की प्रगाढता
थरथराते होठो मे
आकुल हृदय का कम्पन
एक उजले कौतुहल को लिए
आसपास मँडराता रहता है

कोशिश कर देखो
प्रकाश सावला होने से पहले
सूय की अन्तिम किरण से
अपना अन्धकार
सुरक्षित रख सको
चीड वनो की सघनता मे से झाकता
एक टुकडा आकाश
मन को अजस्त्र शान्ति नही देता
वरन् एकाकी गुजरते राही की
एकान्तिक पीडा का एहसास देता है।

विश्वास की कडियो को
यो ही मत टूट जाने दो
अरण्य के सौन्दय को
ऋतुओ की भाषा मे
बोलने दो।

सन्नाटा बरकरार है

मेरे आसपास डूबता हुआ सन्नाटा है
जिसे कापती हुई अगुलियो से
टटोलती हूँ
रेतीली मिट्टी मे
दूर तक धँसता चला जाता है हाथ
और बरकरार रहता है सन्नाटा

अपने भीतर की
कितनी चुनौतियो का सामना किया है मैंने
लचीली टहनी सी जरा सी झुक कर
फिर तनकर खडी हो जाती है
मेरी अहमन्यता

अस्वीकार के नीचे रौंदी गयी आस्था
कई वार खरोच खा चुकी है

दाल रोटी चटनी का ही
सवाल नही होता केवल
जिसे घुमा फिरा कर फिर उसी
धुरी पर लाकर टिका दें
कई एक नगे सवाल होते हैं
जिन्हे स्वाभाविक चोट के साथ
थिर रहकर सहना होता है।

उजास भरी रातो में
नंगे पाव नदी के साथ-साथ
चलती रही हूँ
दूर तक चोन्हनने

उन पदचिह्नों को
जब तुम एकाकी यहां भटकते रहे,
सरसराती हवा को
अपने जिस्म पर महसूसते
आंखों का खारा पानी
नदी-जल में घुलाते रहे,
आज वही जल अंजुलि में भरे
तुम्हारी पीडा को पाना चाहती हूँ
जिसे तुम अनथक सन्तों के मध्य
खामोश अन्धेरे में
भुलाने का प्रयास करते रहे।
तुमने कहा था मुझसे कुछ मत पूछो
बस पीडा को पीडा ही रहने दो
यदि पढ सको तो
मेरा पूरा जिस्म पढो
जो कि पीडा का पर्याय हो गया है।
मैं जानती हूँ
तुम किस तरह
चांद सूरज और नक्षत्रों का
गणित लगाते रहे
उन रातों और दिनों में
जब अकेले ही तुम्हें जूझना पडा
अपने अन्दर की खौफनाक लडाई से—
नई शुरुआत करने से पहले
कई प्रश्न विषैले दंश से
तुम्हें पीडित करते रहे
एक कोई निश्चित राह
तुम नही खोज पाए
कि आखिर में
एक सन्नाटा अपने साथ लेते गए
और एक सन्नाटा मेरे चारों ओर
कटीले तारों सा छोड गए
आज भी वही चुभता हुआ सन्नाटा
बरकरार है मेरे आसपास।

मध्द्दिम साँसों की कराहट

मेरे साथ साथ उतरी तुम भी
उस धरती पर
जहा की माटी और गध
हमे अपने से जोडती है ।

यहा अपाहिज और टूटती सासो वाले नगर मे
चीखो के अतिरिक्त और कुछ नही मिलेगा
आदमी आदमी को ढूँढता रहेगा
समूचा आदमी फिर भी नही पाओगे
कही न कही से वह चोट खाया हुआ
ढहा हुआ और खोखला होगा ।

रात देर तक घिरा रहा दर्द
मद्धिम सासो की कराहट के साथ
एक बेहद ठडा एहसास
कचोटता रहा निरन्तर ।

शताब्दी की फिसलन भरी
चौडी घाटी के तल मे
कितने ही सगीत के स्वर
बिखर गए है
और मै मुहाने पर खडी
दूर दृष्टि डाले
एक के बाद एक
पत्थरीली चट्टान को
रपटते देखती हूँ
और सोचती हूँ

कोई भी सकट इन्तजार नही करता
अपना हक माँगता।
वेजारी से इन्तजार करते करते
रात की चौखट मे
अपनी आस्थाओ को फिट कर दिया
और उनीदी आँखो मे
दुधिया प्रतीक्षा मुँद गयी।

हर इन्कार इतना आसान नही होता
कि हलक तक आते आते
फन्क से उछल कर
वाहर आ जाये।

कटे हुए हाथो से तुम
वोभा नही उठा सकते
न ही खोखले शब्दो की भीनी चादर से
अर्थ का रस निकाल पाओगे
केवल चिनचिनाती सासो के लिए
भीतर पडती दरारो मे
आदमी का जहर रिसते हुए
महसूसते रहोगे।

एक फसल उगाई थी
भूमि को खून पसीने से सीच कर
पूरी की पूरी हमदर्दो की जमात ने
हौसला अफजाई कर
मुँह मार दिया
खडी की खडी फसल
चौपट और बीरान हो गयी

जलते तलवो का दद
पूरे शरीर मे फलता हुआ
काधे और माथे की चौखट से
टकराता है
तो सहमा उखडने लगती हैं सास

लडखडाते पाव
आक्रामक हो उठने है
भीतर का पत्थरीला प्रदेश
मम्यनी सकल्प की चोट मे
बिखर जाता है
चुपचाप एक ढलान पर
रेंगती हुई चली आती हैं
दु ख मश्रमित परछाइयाँ।
वह साठ गाठ
लू सी जलती बातचीत
अनदेखा-अनसुना करते रहने पर भी
रोया रोया जला देगी
तुम्हारे पास ऐसी कोई भी ताकत नही
कि उनके भारी भरकम
लोह गेंडरो से
तुम अपने दरीचा को बचा सको।

वेद व्यास

जन्म 1 जुलाई 1942। सार्वजनिक क्षेत्र मे लम्बा सम्बन्ध। कई दैनिक व साप्ताहिक पत्रों म काम यानी प्रारम्भ स ही पत्रकारिता स रूचि। 1962 स आकाशवाणी के जयपुर केन्द्र पर 'व्यवस्था' सम्बन्धी अपने सिद्धान्तो के कारण आकाशवाणी म कार्यक्रम अधिकारी' का पद ग्रहण नही किया। आकाशवाणी कर्मचारी महासघ के अध्यक्ष एव आकाशवाणी कलाकार सघ के सचिव। हिन्दी व राजस्थानी म समान रूप से लेखन।

प्रकाशित पुस्तकें 1 परमवीर गाथा 2 आज रा कवि 3 धरती हेलो मारै 4 गाधी *प्रकास* 5 *राजस्थान के लोकतीर्थ* 6 *परछाइया* 7 कीडीनगरो।

इनके अतिरिक्त विभिन्न प्रतिनिधि सकलनो मे प्रकाशित।

सम्पर्क आकाशवाणी, जयपुर (राज)

प्रश्नों की आधी

प्रश्नो की ग्राधी म उजड रहे व्यक्ति
चेतन को लील रही ग्रवचेतन शक्ति ।

सीमाएँ काट रहे बहुतालो स्वर
विस्मय से बाट रहे लघुता का ज्वर
निणय से दूर बहे जाते हैं कूल
यहा वहा डूब रहे मन के मस्तूल

सशय के कुहरे मे सिमट रहे सूर्य
परजीवी लगते हैं शब्दो के तूर्य ।

लघुतम ग्राधारो पर बटे हुए दल
उल्टे मुँह लटक रहा पीढी का बल
चौराहे खास रहा चिन्तक का दर्प
ग्राकृति को डसे हुए विकृति का सप

भ्रम के परिवृत्तो म दबे हुए क्षण
बौने से लगते है बुनियादी प्रण ।

तन्त्रो के चक्रव्यूह मत्रो के दश
ग्रमृत को खोज रहे विषधर के वश
ग्राकाशी मुस्काने खडित सदभ
समय की ढलानो पर पिघल रहे गर्भ

रात के उजाले म बुझे हुए पक्ष
ग्रायातित लगते हैं ग्रनुभव के कक्ष ।

•

तेरह ता

कविता तेरहताल की
दूषित अन्तर्जाल की
सीमा के मन तोड रही है
रचना एक अकाल की

नदियों से जग प्यासा है, बालक अभी रुआसा है
रेतीली सरफनियो पर छाया सघन कुहासा है

धरती वृद्ध अकाल की
यायावर कगाल की
मृग तृष्णा को जोड रही है
रचना एक अकाल की

आगन अगना माया है, दम गिनता चौपाया है
खडित जीवनधारा पर, विषपायी मडराया है

नौका उखडे पाल की
नयोजित जजाल की
धाराओं को मोड रही है
रचना एक अकाल की

केवल पतझड देखा है धुधली लक्षमण रेखा है
मन्दर के देवालय पर अकित मृत्यु लेखा है

परिभाषा बहान की
हत्या नये मशाल की
मयचनन को तोड रही है
रचना एक मशाल की

रक्तवोध

शब्दो को तोड रहा रचन नये वोध का
सडको को मोड रहा कोलाहल क्रोध का ।

अपने ही हाथो से करो सुर्ख हस्ताक्षर
देखे ना जाते हैं माटी के टूटे घर
आओ हम मिलजुलकर फाडे प्रस्तावो को
फिर से नगा करदें सत्ता के दावो को

सस्था को तोड रहा मत्र नये बोध का
सडको को मोड रहा कोलाहल क्रोध का ।

मूल्य सभी गिरे यहा वाद हुए नष्ट
जनता को मुफ्त यहा मिलता है कष्ट
सभी यहा परिवर्तन लाने मे व्यस्त
बातो ही बातो म सूय हुआ अस्त

रचना को तोड रहा भाव नये वोध का
सडको को मोड रहा कोलाहल क्रोध का ।

किस किस से मागे हम सपनो की भीख
छप्पन के भूखे को भाती ना सीख
चौराहे बद करो खोलो गलियार
दम घुटने वाला है मुक्त करो द्वार

आदत को तोड रहा अथ नये बोध का
सडको को मोड रहा कोलाहल क्रोध का ।

●

हस्ताक्षर करने है समय के गुलाबो पर
चाहे यह मौसम का शीशमहल टूट जाय ।

कब तक शब्दो की अल्पना रचायेंगे
परिवर्तित धारा म सब कुछ बह जायेंगे
ध्वनियो के आरपार दूधिया उजाले मे
स वो के टुकडो मे कितने दिन गायेंगे

संस्कृतिया लिखनी हैं उन सूने पत्रो पर
चाहे अधुनातन की परिभाषा बदल जाय ।

विवशता दिखाने से उम्र नही बढती है
भीतर की सतहो पर धूप नही चढती है
मोम जडी दीवारें हाथ मे अरघनी ले
भटक रही भीड कही कील नही गढती है

बेनकाब करना है सूरज के पुत्रो को
चाहे इन चित्रो का रग बोध पिघल जाय ।

रुग्ण हुए शब्दा का अर्थ कौन जानेगा
अवतारी पीढी की बात कौन मानेगा
विष बुझी हवाओ मे निर्णय के चक्रो मे
दृष्टि के भेद बदल युद्ध कौन ठानेगा

नामकरण करना है नये सुख सपनो का
चाहे यह भावलोक और कही चला जाय ।

नन्दकिशोर आचार्य

जन्म—31 अगस्त 1945 (बीकानेर)। शिक्षा एम ए (इतिहास और अंग्रेजी)। व्यवसाय के नाम पर कई जुगाड। स्कूल में मास्टरी प्रौढ़ शिक्षा में नौकरी एवरीमैंस (Everyman's) में पत्रकारिता और अब रामपुरिया कॉलिज बीकानेर में वही मास्टरी यानी इतिहास में व्याख्याता। 'चिति' (कविता द्वैमासिक) के कुछ ही अंक निकाले लेकिन पत्रिका को चर्चित बनाने में सफल रहे। 'अंक भरु' (समाचार पाक्षिक) का सम्पादन। 'सप्ताहान्त' के सहभागी सम्पादक। 'नया प्रतीक' (सह-सम्पादन 1974)।

प्रकाशित कृतियां— 1 संवदन इति (कविता संकलन के सम्पादन व सहयोगी कवि)। 2 नयागत (उपन्यास)। 3 अज्ञेय की काव्य-तितीर्षा (आलोचना)। 4 द सेन्ट्रल पालिटी आफ द हिन्दूज (इतिहास)

सम्पर्क प्रवक्ता, रामपुरिया कॉलिज,
बीकानेर (राज)

यह इस तरह क्यों है

यह इस तरह क्यो है
कि मैं जिन रास्तो से भी होकर
गुजरा हूँ
वे सभी वहीं रुक जाने को विवश हैं
जहा से आगे निकल पाना ही
मेरी यात्रा का होना है—

यात्रा वरण है विवशता नही।

दरअसल, ईश्वर एक अधी गली है
जहाँ हर एक रास्ता चुक जाता है
और मेरे लिए रह जाता है
कि इस सड़ी गली के किसी अधेरे कोने म
अपनी भी गुदडी बिछा लूँ !

पर नहो होता मुझमे यह नहीं होता
मैं लौट आता हूँ
अपनी गठरी कधे पर लादे
दाढी खुजाता, लडखडाता
(कही अन्दर यह जानता भी कि)
शायद अधे साप की तरह
निरन्तर भटकते रहना ही
अब मेरी नियति
नही, धम हो गया है।

तुम्हे क्या हो गया था ?

यदि मान भी लूँ
कि पाप ने मुझे ही डँसा
तो तुम्हे क्या हो गया था
जब वह मेरी ओर आ रहा था ?

मुझे तब ही समझ लेना था
कि तुम क्रूर और घमडी हो
और डरपोक भी
—मुझ निरीह से
तुम्हे भला क्या भय था ?

तुम्हारे सबसे प्यारे पुत्र का रक्त
जब मुझ पर
छिडका जाता है
तो कौन होता है पवित्र
मैं, पाप, या स्वय तुम ?

तुम तो पिता हो न !
सचसच कहो
कैसा लगता है तुम्हे
जब यीशु का रक्त
बूँद-बूँद टपकता है
और तुम्हारा चेहरा और हाथ
अपने ही बेटे के खून से
भीग जाते है !

•

वह मोरपाँख

बुरा तो नही मानोगे
यदि मुझे अब
तुम्हारी बासुरी बने रहना
स्वीकार नही।

यह नही कि मैं उपेक्षित हुआ
या कि अधरो पर तुम्हारे
सदा मज्जित रहा
किन्तु मेरा बन रहा सगीत वह
जो मेरे रन्ध्र रन्ध्र से बहा ?

मुझ से तो अच्छी रही
वह मोरपाँख
जो तुम्हारे मुकुट पे चढा
और न भी चढती
पर जिसका सौन्दर्य
उसका अपना था।

यह अन्तर क्या कम है कि
तुम्हारा सगीत
मेरी विवशता है
और मोरपाँख का सौन्दर्य
तुम्हारी।

बुरा न मानना
यदि अब
मैं तुम्हारी बासुरी नही रहा।

तुम

बनो मत
सफाई की कोई जरुरत नहीं
तुमने यह बखेडा किसलिए किया है
सो मुझे पता है।

और तुम्हारा यह नष्ट हुआ भी
पर वहीं तुम चूक गये, प्यारेलाल!
जब मेरा सिर
तुम्हारे चरणों पर टिका
तुम नहीं समझ पाए
कि यह मैं नहीं
भय है—तुम्हारा ही दिया—
जिसे सहारा चाहिए
जसे भूख को रोटी
प्यास का पानी,

और तुम
जो ईश्वर होने जा रहे थे
'कमोडिटी' बन कर रह गये!

इसे तुम्हारी नियति कहूँ
या कर्मफल (!)
कि तुम अपने ही बुने जाल में फसते गये
और तुम्हें लगाव भी नहीं पता!

•

हेमन्त शेष

युवा कवि। कला समीक्षक की हैसियत से तीन वर्षों तक राजस्थान पत्रिका में काय। समाचार भारती से भी सम्बन्धित। देश की अधिकांश भाषाओं में अनुवाद भी हुए हैं। आकाशवाणी से अक्सर प्रसारित। साहित्य और पत्रकारिता के अतिरिक्त चित्रकला मे भी रुचि।

लम्बी कविता "जारी इतिहास के विरुद्ध' काफी चर्चित हुई।

अभी राजस्थान प्रशासनिक सेवा मे चुने गए हैं।

सम्पर्क सी–8 पृथ्वीराज रोड,
सी स्कीम, जयपुर।

सात्वनाएँ

तुम जल रही हो
फानूस की तरह
इस निस्तब्ध रात मे

अधकार सम्बन्धो की दरार मे भर गया है
वह नमक
जो तुम्हारे शब्दो से बनता है
डरे हुए बैंगनी होठो से टपकता है

हवा मे कागज सा फडफडाता हूँ मै
मुझे क्या दोगी सात्वना मे
वह भरपूर बरसात जो उस दिन
हमारे कधो पर गिर रही थी

या
एक आत्मीय मौसम
जो हमारी देह मे बज रहा था
दिन सचमुच-सचमुच उदास होते जा रहे है
यही है अपने एकान्त और अपनी
प्रार्थनाओ का क्षण !

कि रूको रूको
ठहरो कुछ और दृश्यो की फिल्म के बीच
रात की निस्तब्ध आवाजे, अन्धकार,
सात्वनाएँ
तुम जल रही हो या मै
फानूस की तरह, बेबस,
इस निस्तब्ध रात मे,

●

जन्मदिन

भूली हुई उन प्रसन्नताओ के लिए
हमें
फिर जाना होगा
जलसा घर मे

जहा
आयु के केक पर एक चाकू ठहरा हुआ
खुशी से भर कर लोग
गुब्बारे उडा रहे हैं

पर
मुझे विश्वास दिलाओ
कि तुम रोओगे नही
इस दफा
मोमबत्तियो के बुझने पर

•

अनजान यात्राएं

मूक वृक्षो की परछांइयो से
लिपट कर आत्मव्यथा कहती चाद की रोशनी
खामोश हिल रही हो जैसे दूर एक लालटेन

हम चल रहे हैं बराबर पिछले कई वर्षों से
ज्यो किसी खड्खडाती बैलगाडी मे

लोग चुप हो चले हैं शब्दो के अभाव मे
जैसे बरसती हुई निस्तब्धता के पक्ष मे चट्टानें
रात के तीसरे पहर की बाट जोहती भुनभुनाती हैं

सारगी के तार मत छेडो ऐसे मे
रुदन !
तू महज़ एक शब्द ही नही है
रात जब सुन्न पडती धमनियो में पाले सी
उतरती है
मुझे आवाज़ देती हैं नीद और याददाश्त म
यात्राएं !
खामोश हिलता हुई लाल्टेन का एक और नाम है
सफर के खत्म होते जाने का खेद
प्रतीक्षा !
तू महज़ एक शब्द ही नही है
मै निरन्तर जानता हूं बस
किसी खड्खडाती बैलगाडी में

•

समाप्तियाँ

एक चिडिया
जो पखे से टकरा कर मरी
एक बच्चा जो मेले मे गुमा
एक प्रेमिका
जिसे धोखा दिया
एक शीशा जो हाथ से छूट कर गिरा

सब एक एक कर समा गए
मन के सन्दूक मे
और
प्रकट होने लगे
कविता मे

एक के बाद एक
वसन्त के बाद पतझड
और पतझड के बाद फिर वसन्त
और हर वसन्त के खात्मे पर
मै रोने लगा
एक के बाद एक
मन के सदूक मे।

पूर्णेन्दु

जन्म— 14 जुलाई, 1955। शिक्षा— एम ए (अंग्रेजी)। युवा कवि एव कहानीकार। नया प्रतीक, लहर, मधुमती, कचनप्रभा इत्यादि म प्रकाशित।

आकाशवाणी, बीकानेर म अस्थायी कलाकार के तौर पर कार्यरत।

सम्पर्क गोस्वामी चौक, बीकानेर।

तब हमे

मैंने जीता है शहर
जहा मेरे कदमो के चिन्हो की सीमा है
तुमने तो लकडी के खिलौनो मे चाबी भरी है ।
(इस प्रतीक्षा का सिरा
मेरी नजर के पार है ।)

मैं यात्री हूँ
दूर की राहो से
माना है मेरा रिश्ता
मेरी आँखे मगर
नापती हैं पाव की लम्बाइया
तुम थके हो
तुमने झेला है
मेरे सहभोगी हो, लेकिन
दौडकर दीवार छूना ही नही है
जिदगी का लक्ष्य।

खिलौने चल पडे तो भी
मेरे विश्वास म तो
है वो धरती
जहा हजारा पग उगते हो,
यकीनन तब हमे
ऊँचाइयो का भान होगा।

मुझे डर लगता है

मुझे डर लगता है
कहीं मैं उस व्यक्ति का प्रतिरूप तो नहीं
जो साइकिल की सीट पर बैठे बैठे
हमेशा लम्बे सफर की सोचता रहता है।
जिसने मुझे घुटनों पर तो बिठाया है
मगर अपने हाथों से मेरे हाथ पकड़े रहा है।

वही तो है
जिसकी आंखों में हमेशा तेज पंख लगे होते हैं।
वह कहीं बरगला तो नहीं गया है ?
गीली फर्श पर उसके कदमों के निशान
सूख कर स्थायी बन गए हैं
और हम लोग दरियां बिछाने की कोशिश में हैं।
अगर मैं उसी का प्रतिरूप हूँ
तो फिर मौसम क्यूं बदलते हैं ?

मुझे डर है,
इसीलिए
नंगा होकर आईना देखना चाहता हूँ
पेट पर टांगों पर, कंधों पर
कहीं झुर्रियां तो नहीं,
आंखों में
बासिन्दे सपने तो नहीं
मुट्ठियों में
सूखी रेत तो नहीं

महसूसने की बात

बहुत मादक है उजाला शाम का
स्वीकारने की बात है ।
बहुत देखा है उसे मखमल मे ख्वाबो म
ऊँघती दीवार पर माथा टिकाए
बीत जाता है कु आरा दिन ।
उजाला बच रहा देता है सारी मस्तिया ।

जिन्दगी की सुबह मुझको याद है लेकिन
आख की पीडा हमेशा टीसती है
कल दुबारा प्यार बरसेगा
दुपहर भर नीद तरसेगी
मगर उजली हुई चिनगारिया लेकर
हमेशा शाम आएगी
मै जलता ही रहूँगा प्यास मे
प्यास का भी रग बिलकुल है गुलाबी ।

सीखचो से सुनहला आकाश आवाजें लगाता
मै धसे पावो के ऊपर भूल जाता हू सवेग और दिन
तरल सी अनुभूतिया
महसूसने की बात है ।

धूप का इंतजार

मै अब भी जानता हूँ
जब अन्धेरा हो गया है
ऊंची दीवार पर चलते हुए
आसपास झांकना मौत की वीभत्सता महसूस करना है
फेफड़े बर्फ हो जाते है
हृदय चट्टान
बोझ उठाते सीना टूट जाता है
नीचे, इतिहास नही वर्तमान है
जलते पृष्ठों की गंध लिए।
क्रूर आग जबड़े उठाए रेंग रही है।
विश्वास जंग खाता जा रहा है
आस्थाए जल रही है।
नाक आंखो के आगे आ गई है
अब दिखाई कुछ नही देता।
सभी के सिर झुके हैं
गरदनें दुखने लगी हैं
बरसात तो ऊपर से ही आती है
भीग भी जाते है सब।
पोछता कोई नही
धूप का सिर्फ इंतजार है।
सूख जाए सब पुराना और नया
सन्दर्भ और व्याख्याये
कुछ नही नही जचता।
मैं दिशाए खोजता तो चल रहा हूँ
पर मृत्यु की संभावना से
खुद को बचाए जा रहा हूँ।

योगेन्द्र किसलय

जन्म 10 जनवरी, 1939 । शिक्षा, एम ए (अंग्रेजी) । डूंगर महाविद्यालय बीकानेर मे वरिष्ठ प्राध्यापक । कवि, कहानीकार व समीक्षक (आंशिक) ।

प्रकाशित कृतियां 1 और हम (कविता संग्रह) । 2 समवेदन इति (सहयोगी कवि) । 3 राजपूत की पगडी (ऐतिहासिक बाल कथा संग्रह) 4 चेहरो के बीच (कहानी संग्रह का सम्पादन) ।

राजस्थान साहित्य अकादमी के राज्य सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य ।

सम्पर्क पुरानो गिनानो, बीकानेर ।

मेरा सोचना

छोटा मैं भी नही
मगर दरख्त बडा है
सूखा, क्लांत मैं भी नही
मगर दूब हरी है
अभिव्यक्ति मेरी भी है,
मगर स्फटिक प्रप्रात सगीतमय है,
उफान मुझम भी है,
मगर नदी मे अनुकूल विद्रोह है।

ता मुझमे जो कुछ भी है
इतना गौण,
इतना अल्प
कि मै स्वय को न पहाड कह सकता हूँ
न समुद्र,
न दरख्त,
न पत्थरो की आन्तरिक कोमलता—
दूध झरना

मगर मेरा दुराग्रह अथवा अहम्
जो मै स्वीकार नही कर पाता
कि मै आग नही, एक चिन्गारी हूँ
महासमुद्र नही, एक बूद हूँ,
चोडा मार्ग नही, एक सकीर्ण गली हूँ
भव्य प्रासाद नही, एक ईट हूँ,
यत्र नही, एक पुर्जा हूँ ---।

क्या इसका एकमात्र तर्क मेरा अहंकार है
या फिर दरअसल मैं ही सब कुछ हूँ—
यह आकाश,
यह धरती,
यह समूची बुनावट ?

ऐसा मैं सोचता हूँ
मगर यही पर्याप्त है कि सोचता हूँ—
आश्रितों के इस दौर मे
जहाँ प्रत्येक व्यक्ति भीत पर
पनपी टिकी बेल है।

मैं स्वयं अपनी निष्क्रियता तोड़ता हूँ,
और समझता हूँ ठीक अपने को उनसे
जो बन्द है, न खुले
कलंकित है, न धुले !

कैदी

अफसोस !
वह जो मेरे हिस्से मे आया

वह जिज्ञासु था,
मेधावी—
मैंने उसे दीक्षा दी
पढो,
चिन्तन करो,
सत्य का सत्कार करो,
अत्याचार का विरोध ।

वह दीक्षित होकर चला गया
बहुत समय बाद उसका एक पत्र मिला
'कृपया, मुझसे आकर मिलो ।

मै उससे मिला
वह कुछ बोला नही
सूनी आखो से मुझे भेदता रहा
उसका माथा जेल की सलाखो पर था
हाथ नीचे को लटके ।

'मुझे यहा किसने भेजा, किसने ?'
क्या मैं उसके अबोले प्रश्न का
उत्तर दे सकता था ?
मै मुडा और लौट आया ।
तब से जेलर के कई सन्देश आए है—
वह वैसे ही खडा है
सलाखो पर माथा टिकाये,
उसे आकर बिठाओ तो सही
वह थोडा सुस्ताले,
नीद ले ले ।

●

नियति

हमसे कहा गया—
सपने मत देखो,
यह कायरो का काम है
हमने उनकी बात मान ली
वरना हम समाप्त कर दिये जाते।

हमसे कहा गया—
बाहर से सम्पर्क मत जोडो
केवल अपनी चारदीवारी मे रहो।
हम ऐसा क्यो करने लगे ?
हमे अपनी पत्नी, बच्चे याद आ गये।

हमसे कहा गया—
वही लिखो जैसा सत्ता चाहती है
अन्यथा विद्रोह होगा।
हमने बुझे दिलो से
यह आदेश भी स्वीकार कर लिया
हम देश से निष्कासित नही होना चाहते थे
हमे अपनी गलियो से बेहद प्यार था।

मगर अब वे
लोहे की टोपिया पहने
हाथो मे तीखी बरछिया लिए
बठे हैं मेजो पर
उनकी नजरें हमारी किताबो पर है
और वे उतार रहे है

इधर उधर से कुछ वाक्य ।
उन्हे कुछ शब्दो मे,
कुछ वाक्यो मे देशद्रोह की बू आ गयी है—
वे अब हमे
हमारी प्रिय गलियो से बाहर फेक आयेगे ।

हम बरछी के लिए तैयार थे
किन्तु इस जीवित मृत्यु के लिए नही ।
हमने क्यो सोचा ?
क्यो लिखा ?
वे तो बार-बार कहते थे
खेती करो
मजदूरी करो ।

तलाश गुमशुदा की

गुमशुदा एक व्यक्ति नही
पूरी जमात है।
ससार भर के अखबार इश्तहारो के लिये कम होगे।
रहने दो, गुमशुदा ही रहने दो—
हा! कई कारण है,
और अब खो जाना अनिवार्यता है।
बचपन के मदरसे मे
यौवन के महाविद्यालयो तक
रेत ही रेत पर पडे पाव!!
रेत, जिस पर सभी नक्श तुरन्त ही मिट जाते है,
और माथा पकड कर बैठ जाता है चतुर खोजी।
कसे कोई ढूढे
रेत मे समायी जिन्दगी को?

जमात!
हा कुल जमात खो गई है
बारहखडी और शुष्क परिवार के भयावह समुद्र म
डेनमाक के उस पागल से राजकुमार की तरह,
प्यार खो गया है
स्त्रियो मे,
हज़ार सलवटो वाले सीत्कारते बिस्तर पर पडा है
देहो का समूह—
नगे, कुलबुलाते कीडो की तरह।

मा बाप, बहिन, भाई, पत्नी, प्रेयसी
सब एक जड जगल मे गुम हो गये है—

एक दूसरे से असम्पृक्त, अबूझे ।
दोस्त तो बहुत पहले ही पलट गये थे,
जब दूर बर्फ पर बारूद सौंधी थी,
और गलियों मे लाठियां बरसी थीं,
सर फूटे थे ।

मजाक करते-करते, मजाक सहते सहते
हम सब बह गये ।
तब से तट मिला ही नही,
और अब हम भूल गये है
कि तट होना भी है ।
लाहे की मुहरबन्द पेटियों म
हमने जो अपना अस्तित्व डाला था
वह होश आने पर कारागृहों के अन्दर
भौचक्का, लाचार नजर आया ।
अब फिर नये वसन्त का बिगुल बजा है,
घोषणा हुई है कि तुम खो नही सकते,
तुम्हारे खोने का अर्थ है
गंगा का सूख जाना
या
हिमालय का अदृश्य हो जाना ।

कितने सुलभ है वक्तव्य !
कितना सहज है खो जाना !!
अब मुझी को देखो
मै अपने छोटे से घर म खो गया हूँ ।
मेरे विलुप्त हो जाने की है किसी को चिन्ता ?
मै जानता हूँ मुझे ढूंढने का नाटक होगा
और कुछ दिनो बाद रपट दे दी जायेगी—
'गुमशुदा मिला नही'
यानी
वह मर गया, ढह गया ।

जब एक लघु आवास मे मेरी यह स्थिति है,
तो

तुम तो चौराहे पर खडे हो,
जहा ठीक तुम्हारे सर पर मडरा रहे हैं
गिद्ध ही गिद्ध !

तुम अभी गायब हो जाओगे—
चोच और पजो मे,
और फिर क्या अर्थ रखेगा
अखबार मे तुम्हारा इनामी फोटो,
रेडियो पर नाम,
या
गू गे थाने मे मामूली रपट ?

कल बहुत पानी पडा था,
लेकिन सारा समुन्दर में,
बचा-खुचा रेत के अजगरी टीबा पर।
वहा तुम्हारे और मेरे चिन्ह नहीं हैं
केवल प्रलाप या निस्तब्धता है।

एक सामूहिक हादसा हो गया है।
हम सब
कही भीतर धँस गये है—
यत्र मँगवाये गये है—
तलाश होगी उनकी,
जो है तो सही,
मगर मिल नहीं पा रहे।

9